Year 2, Issue 5
Jan.-March, 2005

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष २ - अंक ५, जनवरी-मार्च २००५

वसुधा
संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
नव वर्ष	डो. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त अग्रहरि	३
स्मृतियों के पद-चिह्न	मुल्कराज आनन्द अनुवादक, कैलाशनाथ तिवारी	४
जीना क्या जीवन से हार के माँ से प्रभावित होता है	स्नेह ठाकुर	७
स्त्री का व्यक्तित्व	मृणाल पाण्डे	८
नारी सशक्तिकरण	ज्योति कालरा 'उम्मीद'	९
श्राद्ध	डो. सुशील कुमार फुल्ल	१०
गीत	जवाहर इन्दु	१५
पार्टी	ममता खरे	१६
परिणीता	प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र	२०
है यह अरमान	अनिल मेहता	२१
ख ीबोली हिन्दी के बीज कवि : अमीर खुसरो	डो. वीरेन्द्र कुमार वसु	२२
हिन्दी	मधुप मोहता	२३
प्रेयसी पुराण	डो. कमल गुप्त	२४
'ए प्रिन्सेस रिमेम्बर्स' : महारानी गायत्री देवी	डो. रंजना हरीश अनुवादिका डो. शशि अरोरा	२८
स्वतंत्रता	पाराशर गौ	३१
पुरुषार्थ, ढ़लता सूरज या नया सवेरा	स्नेह ठाकुर	३२
माँ	सूर्यकांत नागर	३६
बिखराव	मधुप शर्मा	३७
खरोंचें	सरन घई	३९
सरोगेट मदर	डो. उषादेवी कोल्हटकर	४०
उम्मीद	निर्मल सिद्धू	४४
माँ	कमल कपूर	४४

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।
रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

संपादकीय (अंक ५, जनवरी-मार्च २००५)

वसुधा अपने जीवन के दूसरे वर्ष में पदार्पण कर रही है। पिछले साल जब उसने अपना एक नन्हा कदम आगे बढ़ाया था, उसे उसके साहित्यकारों और पाठकों ने दृढ़ता प्रदान की है। वसुधा के शैशव-काल को समृद्ध बनाने के लिए वह सभी की आभारी है। और साथ ही इस आश्वस्तता से कि उसकी ऊँगली पक ने वाले ये हाथ, उसे कदम-दर-कदम आगे बढ़ाने वाले ये साथ, उसके शुभचिन्तक हैं, उससे अगाध प्रेम करते हैं, तो यह सम्बन्ध चिरस्थायी हो जाता है। जब शिशु आश्वस्त और निश्चिन्त हो जाता है तो उसकी प्रगति सहज धारा-सी अनुकूल दिशा में स्वयं ही प्रवाहित होने लगती है।

जो आधारभूत उत्साह और स्नेह वसुधा को मिला है, वह वसुधा को दिशा-भ्रान्त होने से बचायेगा, सदैव ही उसकी रक्षा करेगा। प्रेम जीवन की अमूल्य निधि है, दृढ़ता से आगे बढ़ने की कुंजी है, प्रगति-पथ पर आगे ही आगे बढ़ने की संजीवनी है। प्रेम किया नहीं जाता, बस हो जाता है अतः वसुधा स्वयं में भाग्यशालिनी है कि सबका यह उम ता प्रेम उसकी झोली भर गया।

वसुधा को अपने साहित्यकारों व पाठकों पर गर्व है। वसुधा के लिए दोनों ही अभिनन्दनीय हैं, वह दोनों ही का अभिनन्दन करती है। पत्रों व दूर-भाष द्वारा वसुधा की जो हौसला-अफ़ज़ाई की गई है, वह वसुधा के लिए उत्साह और हर्ष का विषय है। वह उन सभी के प्रति आभारी है।

साहित्यकारों और पाठकों की मंगल-कामनाओं से ही वसुधा ने यह सफ़र तय किया है। आज वह जिस मुक़ाम पर पहुँची है, वहाँ साहित्यकारों का पूर्ण सहयोग व अथक प्रयासों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण व सराहनीय है। साथ ही पाठकों द्वारा वसुधा के सारे साहित्यकारों को सराहा जाना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उसके प्रत्येक साहित्यकार ने अपना रचना-धर्म बख़ूबी निभाया है। वसुधा की सफलता व प्रशंसा, वसुधा से जु े हर साहित्यकार की सफलता व प्रशंसा है। रचनाकार के लिए पाठकों द्वारा सराहा जाना ही चरमोत्कर्ष पुरस्कार है। अतः जहाँ रचना स्वयं में महत्वपूर्ण है, वहीं उसका पाठकों द्वारा आत्मासात कर अनुकूल प्रतिक्रिया का प्रतिपादन भी उतना ही महत्वपूर्ण है। यहाँ अनुकूल प्रतिक्रिया से मेरा मतलब रचना से सहमति या असहमति नहीं है। रचना यदि आपके हृदय को आलोि त करती है, आपको सोचने पर विवश करती है, तो वह अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। रचना ने पाठक के हृदय और मस्तिष्क को छुआ। रचनाकार और पाठक एक-दूसरे के पूरक हैं।

वसुधा सबकी प्रेम-पात्र बन स्वयं में गौरवान्वित हो, प्रतिदान में, अपने स्नेह-दाताओं की आशाओं की कसौटी पर खरा उतरने का संकल्प लेने के लिए कटिबद्ध है।

वसुधा से जु े हर व्यक्ति, साहित्यकारों, पाठकों को यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि पिछले वर्ष २६ सितम्बर को हिन्दी का एक गौरव-स्तम्भ स्थापित हुआ। टोराण्टो, कैनेडा में पहली बार "दि वर्ड ऑन द स्ट्रीट," नैशनल बुक एंड मैगज़ीन फैस्टिवल में, हिन्दी को मंच दिया गया। अभी तक होते आए इस कार्यक्रम में, जिसकी उपस्थिति संख्या लगभग २००,००० व्यक्ति हैं, अँग्रेजी के प्रख्यात लेखकों को ही अपनी पुस्तकों से पढ़ने के लिए आमंत्रित किया जाता रहा है। इस बार उन्होंने हिन्दी, उर्दू, गुजराती, फ्रेंच, चीनी व स्पैनिश भाषाओं को शामिल किया। हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं के लिए मेरा चयन हुआ और गुजराती के लिए ऑर्डर ऑफ कैनेडा सम्मानित श्री जय गज्जर का। जहाँ व्यक्तिगत रूप से, अपनी किताबों से पढ़ने का सौभाग्य और इन दोनों भाषाओं का प्रतिनिधित्व करना, मेरे लिए गौरव की बात थी, वहीं सबसे ब ा गौरव मेरे लिए इस बात का था कि हिन्दी को सम्मान मिला, और इसके साथ ही वसुधा को भी सराहा गया। इस श्रेय की भागीदारी मैं आप सबके साथ बाँटना चाहूँगी। ये प्रयास ही हमारे पथ हैं, हिन्दी को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाने के गुरु-मंत्र हैं। अतः हम सबको इन प्रयासों में एकाग्रता से जुटे रहना है।

नव वर्ष मंगलमय हो।

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

नव वर्ष

डा. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त अग्रहरि

मंगलमय हो नव वर्ष का शुभ दिन मंगलमय हो।
नयी चेतना, नयी कामना, नयी भावनामय हो।।
नवोल्लास हो, नव विकास हो,
नये सूर्य का नव प्रकाश हो।
जन-जन के मानस-मंदिर में
नयी प्रेरणा, नव उमंग हो।
जगे विश्व-बंधुत्व मनुज का, नव जीवन मधुमय हो।
मिट जाये तम-तोम, निराशा,
अहं, अज्ञान, कुविचार-कुहासा।
रहे न शोषण, उत्पी न या
राग-द्वेष की अशुभ पिपासा।
संकल्पों से प्रेरित मानव का मन अजय-अभय हो।
खिले राष्ट्रभाषा का शतदल,
अमल रहे संस्कृति-सरिता-जल।
कवि-कोविद के मधुर गुंजन से
मुखरित होवे प्रतिपल, प्रतिक्षण
इस भारती का हर-एक कण।
मंगलमय हो नव वर्ष का शुभ दिन मंगलमय हो।
नयी चेतना, नयी कामना, नयी भावनामय हो।।

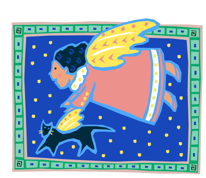

एक प्रतिष्ठित साहित्यकार के लेखकीय समर्पण की कहानी : उन्हीं की ज़ुबानी -

स्मृतियों के पद-चिह्न

स्वर्गीय श्री मुल्कराज आनन्द

अनुवाद : कैलाशनाथ तिवारी

(अँग्रेज़ी के प्रख्यात भारतीय उपन्यासकार, कहानीकार एवं दलितों के हिमायती श्री मुल्कराज आनन्द, जिन्हें वयोवृद्ध साहित्यकार के सम्मान से विभूषित किया जा चुका है, इस संस्मरणात्मक आलेख में यह स्पष्ट करते हैं कि वह कौन-सी बात थी, जिसने उन्हें दर्शनशास्त्र के अध्यापक की जगह लेखक बनने को प्रेरित किया।)

जब कभी मैं इस बात पर विचार करता हूँ कि मैंने अपनी कहानियों में जो कुछ भी लिखा है, उस शब्द-सृष्टि के पीछे कौन-सा प्रेरणा-बल रहा है, तो पाता हूँ कि मुझमें एक तीव्र अभीप्सा थी कि कैसे लोगों तक अपनी बात पहुँचा सकूँ, उनके द्वारा समझा जाऊँ, अर्थात् - कैसे मैं उनका प्यार पा सकूँ। यदि लेखन के पीछे मनुष्यों का प्यार पाना मुख्य प्रयोजन है, तो बात हृदय के भीतर से आएगी। संवेदनशील हृदयों द्वारा महसूस की गई दर्दभरी अनुभूतियाँ मानवीय संवेदनाओं के रूप में अभिव्यक्ति पाती हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् में शिष्य, गुरु से पूछता है, 'मैं इस जीवन का क्या करूँ?' तो गुरु उत्तर देता है, 'अपने से पूछो कि मैं क्या हूँ, कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है?'

अल्लामा इक़बाल ने मुझे बताया था कि उनकी लम्बी कविता 'असरार-ए-ज़िन्दगी' इसी उद्देश्य से लिखी गई थी। उन्होंने कहा था कि तब तक कोई पूर्ण एवं पवित्र नहीं हो सकता, जब तक कि वह सत्य से परिचित न हो जाए और स्वयं को मान और सम्मान से, प्रवंचना और पाखण्ड से मुक्त न कर ले।

सत्य की खोज़ में मैं पश्चिम की ओर गया। मैं दार्शनिक सिद्धान्तों को जानना चाहता था। प्लेटो, प्लूटिनस, कॉण्ट, हीगल आदि दार्शनिकों ने जिन गहन तथ्यों, परिकल्पनाओं एवं विचारों को प्रस्तुत किया था, मुझे ऐसा लगा - जैसे उसमें मानव-जीवन को स्पर्श नहीं किया गया है। गोटे का फाउस्ट, शैतान को अपनी आत्मा महज़ इसलिए बेच देना चाहता है, ताकि वह संसार को जीत सके और एक अहंकारी बुद्धिवादी का प्रतिरूप बन सके। मैं न तो स्वयं को भटकाना चाहता था, न ही कल्पनालोक में विहार करना अथवा अहंकारी बनना चाहता था। मुझे यह भी गवारा नहीं था कि मैं रोज़-रोज़ की आम ज़िन्दगी में डूबकर रह जाऊँ।

अस्तित्ववादी निराशा से चकित-थकित मैंने अपनी कहानी 'लॉस्ट चाइल्ड' लिखी। मैंने सोचा था कि शायद उस भटकाव के माध्यम से मुझे रास्ता मिल जाए। स्मृतियाँ आपके अन्तर्जगत् को यथार्थ में प्रत्यावर्तित करने में मदद कर सकती हैं। मुझे उपनिषद् के गुरु द्वारा शिष्य को दिया हुआ परामर्श याद हो आया। तभी मैंने यह जानने के लिए कि मैं कौन हूँ, मैं कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है - इस विषय से सम्बन्धित आत्म-स्वीकृति पर लिखना शुरू किया।

इस सबका उत्तर था - मेरे माता-पिता, जो मुझे इस संसार में लाए और जिन्होंने मेरा पोषण किया। मेरी सबसे पहली स्मृति माँ के स्तनों से जु ी है - शिशु के उस अहं से जो पिता की डाँट-फटकार के विरोध में माँ का ला -प्यार पाना चाहता है। पिता की प्रता नाओं की चिन्ता न करते हुए मैंने एक साहब के बाग में घुसने का साहस किया और गुलाब का एक फूल तो लिया। मेरी अँगुलियों को काँटों ने बींध दिया और मैं रो प ा। कैण्टोन्मेण्ट के बाग के माली ने मुझे सान्त्वना के रूप में एक गाजर दी।

ब े बच्चे मुझे अपने साथ नहीं खेलने देते थे, क्योंकि उनके आपसी झग ों में मुझे चोट लग सकती थी, इसीलिए मैं माँ की लोककथा का राजकुमार रसालू बन गया, जो विश्व-विजय के लिए अपने सफ़ेद घो े पर निकलता है। मेरा सफ़ेद घो ा एक छ ी थी।

अपनी उम्र से अधिक ब े दिखने की मेरी लालसा बन्दूक की उन गोलियों की आवाज़ों के भय से दब गई, जो सिपाहियों द्वारा अपने शत्रुओं का निशाना बनाने के अभ्यास के दौरान चलाई

जाती थीं। मेरी माँ ने मुझे उन स्त्री-पुरुषों की प्रेतात्माओं के बारे में बताया था, जो उन क्रूर गोरों को सज़ा देने के लिए भटकती फिरती थीं, जिन्हें उन्होंने युद्ध के दौरान मार डाला था। गोरों की आत्माओं - जिन्हें माँ राक्षस कहती थीं और उनके द्वारा मारे गए लोगों की आत्माओं का भय मेरे मन में घर कर गया था। मुझे अँधेरे से डर लगता था और मैं दोपहर के सन्नाटे से भी भयभीत रहता था। दमकती भोर जैसे चेहरे वाला मैं पाँच वर्ष की आयु में ब` अनचाहे मन से स्कूल जाता था। मेरे स्कूल का अध्यापक गरीबों के उन मोटी बुद्धि वाले बच्चों की खोप ी में शब्दों को प्रवेश कराने के लिए बेंत का प्रयोग करता था। अन्य बाबुओं के बेटों की भाँति मैंने भी 'सबेरे जो कल आँख मेरी खुली' कविता कण्ठस्थ कर ली थी। बुद्धू बच्चों को बेंत मारने के लिए मुझसे कहा जाता था। मैं उन्हें ब` धीरे से मारता। उस पर अध्यापक ने मेरे हाथ पर बेंत मारकर मुझे यह सिखाया था कि बेंत से कैसे पिटाई करनी चाहिए, परिणामस्वरूप बच्चे मुझे स्कूल-प्रांगण में घेर लेते और मुझ पर टूट प ते और तब तक मेरी पिटाई करते, जब तक मैं बेहोश न हो जाता। ब` बच्चे भी, जब मैं उनके साथ खेलना चाहता, तो अपने से दूर रखते। ब ों द्वारा छोटों पर की जाने वाली क्रूरता का मुझे तब आभास हुआ।

मैं अन्य उपेक्षितों के साथ रहता। अस्पृश्यों में से केवल 'बखा' को हमारी टीम में इस शर्त पर प्रवेश मिला था कि वह किसी को छुएगा नहीं और वह हमारी टीम को विजयी बनाएगा। हम दोनों मछली पक ने नदी पर जाते। जब वह प ोस के गाँव में आम के पे ों से आम गिराता तो मैं उन आमों को अपनी झोली में इकट्ठा करता। मैंने उससे पंजाब के लोकगीत सीखे थे, जिन्हें वह अपनी माँ से सुनता था। एक बार झग` में जब मेरे सिर में नुकीला पत्थर लग गया, तो वह मुझे घर लाया था, पर मेरी माँ ने उसे मुझे छूने के लिए ब ा भला-बुरा कहा था और अपवित्र हो गए मुझको स्नान कराया था। वह वहाँ से अश्रुपूरित आँखों से लौटा था। उसके प्रति यह अन्याय मेरे हृदय में गहरे तक पैठ गया था। इस तरह बखा मेरे पहले उपन्यास 'अछूत' का हीरो बना।

गोरे साहबों का अपने से छोटे गेहुँए साहबों के प्रति विद्वेषपूर्ण व्यवहार, ब` अधिकारियों द्वारा नए प्रवेशार्थियों को दी जाने वाली गालियों, शिक्षितों का अशिक्षितों के प्रति अपमानपूर्ण व्यवहार, गाँव से आए मेरी माँ के भाइयों एवं मेरे अपने ही शहर अमृतसर के गन्दे लिबासवाले ठठेरों के प्रति मेरे शिक्षित पिता की उपेक्षापूर्ण दृष्टि तथा क्रूर शब्दों, कठोर हाथों और अहंकारी लोगों ने मुझे बाग़ी बना दिया था।

जब मैंने कैण्टोन्मेण्ट के जरनैल साहेब द्वारा 'होती' मैदान में पठानों के समूह पर गोलीबारी के पणिामस्वरूप गा ियों में लाशों को कब्रिस्तान की ओर जाते देखा था और माँ के द्वारा यह बताए जाने पर कि अब उन मृत व्यक्तियों की प्रेतात्माएँ आएँगी और हमारा गला घोंट देंगी, क्योंकि मेरे पिता उन गोरों के नौकर थे, तो मेरे अन्दर एक तनाव भर गया था और वह तनाव सन् १९१९ में, जब मैं अमृतसर में कर्फ्यू के दौरान बाहर घूम रहा था, पुलिस द्वारा मुझे दी गई सात बेंतों की सज़ा के बाद तो और भी स्थायी हो गया था।

लाला लाजपतराय के शिष्य केदारनाथ तरुणाई के दिनों के मेरे परामर्शदाता थे। उन्होंने मुझे विद्रोहियों के साथ जो दिया था और तभी मैंने बम बनाना सीखा था। मुझे अपने मुँहबोले चाचा देवदत्त ने गाँधी जी के बारे में बताया, जिन्होंने यह कहा था कि प्रतिक्रिया के रूप में किसी को मारना नहीं चाहिए।

वैसे भी मैं स्वाभाव से अहिंसक ही था। हम विद्यार्थियों ने कॉलेज के अँग्रेज प्रिन्सिपल के निलम्बन के विरोध में, क्योंकि उसने एनी बेसेण्ट को भाषण देने के लिए बुलाया था, ह ताल कर दी। दूसरे विद्रोहियों के साथ मुझे भी एक महीने के लिए जेल जाना प ा। जब मैं जेल से वापस आया तो मेरी इस गतिविधि से जु ने के कारण पिताजी ने माँ को खूब खरी-खोटी सुनाई।

मैं घर छो कर कवि इक़बाल से मिलने चला गया। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या करना चाहता हूँ। मैंने कहा कि मैं आपके चरण-चिह्नों पर चलना चाहता हूँ और जर्मनी जाकर दर्शनशास्त्र पढ़ना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, 'मेरा रास्ता तुम्हें भी जर्मनी तक ले जा सकता है, किन्तु तुम जर्मन भाषा नहीं जानते हो, अतः लन्दन जाओ। मैं तुम्हें दोस्तों के नाम चिट्ठियाँ दे दूँगा।' उन्होंने मुझे १००रुपए उपहार-स्वरूप दिए। मेरी माँ ने गृहस्थी के दौरान कोर-कसर करके बचाए ३००रुपए दिए। मैं पिताजी को बिना बताए ही घर छो कर निकल गया और 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के सम्पादक बी.जी. हार्नीमैन की सहायता से बम्बई से इटैलियन जहाज में बैठ गया।

प्रोफ़ेसर डाज़ हिक के पहले ही सेमीनार में जब किसी ने यह ज़िक्र किया कि वैज्ञानिक हाइज़ेनबर्ग के मतानुसार 'कुछ परमाणु स्वतंत्र रूप से उ ा करते हैं', तब मुझे एहसास हुआ कि न तो मैं भौतिकशास्त्र जानता हूँ, न ही गणित; और दर्शनशास्त्र उन दिनों विभिन्न वैज्ञानिक विधाओं की समीक्षा मात्र था। मैंने अपनी बात प्रोफ़ेसर को बता दी। उन्होंने मुझे अपने घर बुलाया, कुछ किताबें दीं और लन्दन से दूर नार्थ वेल्स के गाँव में जाने के लिए कहा, ताकि वहाँ मैं अपनी पृष्ठभूमि तैयार कर सकूँ।

जब मैं विभिन्न विधाओं के अनुसंधानात्मक शोध में लगा था, तभी मैंने अस्तित्व के बारे में बालसुलभ कौतुहलपूर्ण दृष्टि से अपने अनुभवों एवं शंकाओं के बारे में लिखना शुरू किया। मैं सारे संसार को उसमें समेट लेना चाहता था। वह आलेख एक हज़ार पृष्ठों में पूरा हुआ। किसी ने मुझसे कहा कि इस आलेख की सामग्री के आधार पर एक लघु उपन्यास लिखूँ। मैंने अछूत के जीवन से सम्बन्धित एक दिन के बारे में लिखना शुरू किया।

एक बार एडवर्ड सैक्विले वेस्ट ने मुझसे पूछा कि मैं क्या लिख रहा हूँ? मैंने कहा, 'मैं अछूत पर एक उपन्यास लिख रहा हूँ।' 'कोई भी अपनी 'कोकनी' पर हँस सकता है। डिकेन्स ने भी ऐसा ही किया है।' उसने कहा।

जब मैं आयरलैण्ड गया तो वहाँ मैंने कवि ए.ई. (जार्ज रसेल) से इसका ज़िक्र किया। उन्होंने कहा, 'ब्लूम्सबरी में अछूतों के लिए कोई स्थान नहीं है। तुम गाँधी के पास जाओ, जो अछूतों के संघर्ष को स्वतंत्रता के लिए किए जाने वाले संघर्ष के बराबर दर्जा देते हैं।' मैंने गाँधी जी को लिखा कि क्या मैं उनसे मिल सकता हूँ। उन्होंने उत्तर में पोस्टकार्ड भेजा : '१९२७ की बसन्तऋतु में आओ!'

साबरमती आश्रम में ब्लूम्सबरी का मुझ जैसा अर्द्ध गेहुँआ और कृत्रिम बुद्धिवादी साहब एक ईमानदार निष्ठावान व्यक्ति बन गया था। शक्तिशाली सरकार के विरुद्ध अहिंसावादी दृष्टि के प्रति मेरी तनिक भी आस्था नहीं थी, वह भी बदल चुकी थी। मैंने महात्मा गाँधी को अपना उपन्यास दिखाया। उन्होंने कुछ पृष्ठ पढ़े और बताया कि मैंने बहुत ब े-ब े और संश्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने कहा, 'हरिजन आहें भरते हैं, रोते हैं तथा बहुत थो े शब्द बोलते हैं और तुमने उनके मुँह में इतने ब े-ब े शब्द दिए हैं।' मैंने बताया कि यह जेम्स ज्वायस का प्रभाव है। उन्होंने कहा, 'वैसा लिखो, जैसा वे बोलते हैं।' मैंने 'अछूत' को फिर से लिखा।

बाद में चार वर्षों के भीतर यह उपन्यास लन्दन के १८ प्रकाशकों द्वारा अस्वीकृत किया गया। मैं आत्महत्या करना चाहता था, किन्तु ऐसा करने का मुझमें साहस नहीं था। मुझे जीवन से बहुत प्यार था और उसे मैं ऐसे नष्ट नहीं करना चाहता था। मेरे एक मित्र इस उपन्यास को ई.एम.फार्स्टर के पास ले गए। वह अनुग्रहशील लेखक 'स क के उस पार के लोगों' द्वारा तरुण अछूत की परित्यक्तता से बहुत दुखी हुआ, जब कि वह स्वयं अपने भारत-प्रवास के दौरान कभी वहाँ नहीं भटका था। उसने मेरे लिए प्राक्कथन के शब्द लिखे। एक छोटे से प्रकाशक ने उपन्यास छापा। उसका ब ा स्वागत हुआ। तब से अब तक यह उपन्यास विश्व की २४ भाषाओं में अनूदित हो चुका है।

उसके बाद के सभी उपन्यास मेरे मनस्ताप की अभिव्यक्ति हैं, जिनका मूल स्त्रोत रूढ़िग्रस्त धर्म, स्वस्थ प्रथाओं और परम्पराओं के स्थान पर लकीर की फ़कीरी, उच्चस्तर के लोगों का निम्नस्तर के लोगों के प्रति रोबदाब, छोटों के प्रति ब ों का क्रूर व्यवहार, सभी प्रकार की दासता के प्रति विरोध तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता में सम्मिलित सभी प्रकार के अधिकारों की स्थापना में निहित है। हैमलेट की तरह मैंने भी यही बात सामने रखी है : 'पूरी समग्रता से होना या फिर न होना।'

अहिंसा के प्रति मेरा मन पूर्णरूप से भले ही समर्पित न हुआ हो, फिर भी उसने मुझमें मानव-जीवन की तमाम समस्याओं के सामने ख ा होने, शक्तिशाली द्वारा कमज़ोरों की पी ा के प्रति संवेदनशील बनने एवं उनके शोषण के विरोध में पुजारियों द्वारा अछूतों को कलंकित-तिरस्कृत-अपमानित, यहाँ तक कि मृत्यु में ढ़केलने के विरोध के सामने ख े होने के लिए काफ़ी हद तक ईमानदार और शक्तिशाली बनाया।

कर्मठ जीवन जीने की जो विधि गाँधी जी ने हमें सिखाई, उसका अर्थ है मानव का अन्य मानव को अपने व्यवहार से निर्भय बनाना, पृथ्वी के मानवमात्र के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना। इसका अर्थ है, 'पराजित की वीरता' - जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने हमें बताया। हार का अर्थ है कि विजय

के लिए हमारा संघर्ष जारी है, जिससे हमें शक्तिशाली से ल ने की ताक़त मिलती है, जिसमें मानव के प्रति कारुणिक संवेदनाएँ, प्रेमपूर्ण व्यवहार और गरीबों के प्रति आस्थाएँ निहित हैं।

हम अपनी पुरानी पुस्तकों-पुराणों में कहते हैं कि मनुष्य देवताओं की इच्छा और अनजाने प्रारब्ध के सामने अपने को विवश पाता है, परन्तु आज के ज़माने में हमें संघर्ष द्वारा अपने भाग्य को बदल डालने की स्वतंत्रता है।

साहित्य मनुष्य को पूर्वनिर्धारित भाग्य के बंधन से मुक्त करता है। गाँधी जी का यह कहना है कि 'ईश्वर रोटी की शक्ल में गरीब के पास आता है।' का अर्थ था कि वे दैवी तत्व को धरती पर उतार लाये थे। अध्यात्म ने नीति का स्वरूप ग्रहण किया था।

मेरा ऐसा मानना है कि मानवीय नियति की इस नई अवधारणा के सम्बन्ध में हमारे संविधान में मानवीय अधिकारों के लिए उल्लिखित स्वीकृति है।

साहित्य को एक साहसिक कृत्य बनना होगा।

(डॉ. अम्बाशंकर नागर जी के सौजन्य से यह लेख उपलब्ध हुआ है।)

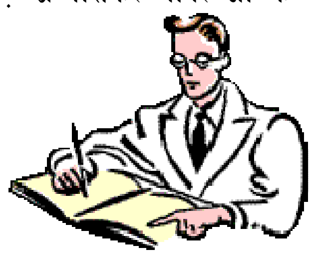

जीना क्या जीवन से हार के

स्नेह ठाकुर

जीना क्या जीवन से हार के
चल प` कि श्वास है अभी बाकी
हर साँस जी गया जो ऐसे
मरने का उसको ग़म नहीं कभी।

कहती है धरा, कहता है गगन
चलता नहीं ताउम्र गर्दिशों का सफ़र
काली अँधेरी रात में चाँदनी खिल जाएगी
तुझे अँधेरों में रोशनी मिल जाएगी।

जीवन है संघर्षों का नाम
कर ले तू हर मुश्किलें आसान
साहस का दामन न तू छो कभी
साहस से मिली मौत भी है ज़िन्दगी।

जीना क्या जीवन से हार के
चल प` कि श्वास है अभी बाकी
हर साँस जी गया जो ऐसे
मरने का उसको ग़म नहीं कभी।

माँ से प्रभावित होता है स्त्री का व्यक्तित्व

मृणाल पाण्डे

जब एक माँ अपने नवजात का पहली बार स्पर्श करती है तो शिशु ल का हो या ल की, उसके मन में अनेक भावनाएँ समवेत रूप से उम आती हैं। उत्सुकता, प्यार, भय, शंका, परिपूर्णता का अहसास, तृप्ति-अतृप्ति और नवजात शिशु यदि कन्या हो तो माँ को वह एक मायने में अपने वजूद का एक विस्तार, अपना एक नन्हा अक्स भी प्रतीत होती है। एक साथ एक गहरे बंधन और मुक्ति की कामना, एक राग और विराग का द्वैत, जो एक स्त्री में अपने आप को लेकर भी मौजूद रहता है, माँ और बेटी दोनों को अब अपनी परिधि में ले लेता है और यह अनेक स्तरोंवाला जटिल बंधन तब से दोनों के जीवन के अंत तक चलता जाता है। माँ बनने से पूर्व एक स्त्री के मन में खुद अपने आपको लेकर कैसी भावना है? उसकी आत्मछवि सकारात्मक है या नकारात्मक? यह उसकी बेटी की परिवरिश और बेटी के स्वतंत्र व्यक्तित्व, दोनों पर आगे जाकर गहरा असर डालती है।

'क्वचिदपि कुमाता न भवति' - जैसी उक्तियों के बावजूद स्त्रियों की अनुभूत सचाई यह है कि कोई भी स्त्री जन्मना सुमाता का रोल सीखकर नहीं आती। माँ बनने के बाद ही वह मातृत्व के बारे में हर दिन कुछ नया सीखती और आत्मसात करती है और मातृत्व की लम्बी दौ में (किसी भी प्रशिक्षण प्रक्रिया की तरह) कभी खुशी कभी गम, कभी भूल कभी चूक का होना एक सहज-स्वाभाविक बात है। हमारे यहाँ माँ को मनुष्य की बजाए देवी और मातृत्व को हर कुतर्क के परे एक लगभग दैवीय और पूजनीय स्थिति माना-बखाना जाता रहा है और एक औसत माँ जब कभी न कभी अपनी (नितांत मानवीय) अक्षमताओं के चलते शिशु के प्रति क्रोध या चिढ़ की भावना का अनुभव करती है तो उसका मन बेवजह एक गहरी ग्लानि और अवसाद से भर उठता है। इस ग्लानि की कचोट के चलते अनेक बार युवा माँएँ अपने स्वतंत्र अस्तित्व का विस्तार करने से झिझकती हैं और बाद में 'कुछ न बन पाने' की उनकी खीझ गलत-सलत मुद्दों पर बच्चों, खासकर बेटियों पर टूटती रहती है कि कैसे उसका सारा युवाकाल घर-गिरस्ती और बच्चे पालने में ही सिमटकर रह गया।

अपनी बेटियों से अपना जटिल और गहन रिश्ता सही तरह समझ पाने को मैंने अनेक माँओं की तरह बार-बार अपने और अपनी माँ के रिश्तों के बारे में सोचा है। हममें से अधिकतर माँओं ने खुद अपनी माँओं से बचपन में ही एक गूढ़ अनकहा समझौता किया होता है कि हम अपने आपसी रिश्ते की पवित्रता को ईश्वरीय देन की तरह शिरोधार्य करेंगी। उस पर कभी कोई सवालिया निशान नहीं लगाएँगी और माँएँ पूरे बचपनभर प्रायः हम सभी के लिए आदेश का स्त्रोत बनकर विनम्र आज्ञाकारिता की एक स्थली रचती हैं। अच्छी ल की बनने के लिए हम क्या खाएँ, पहनें, खेलें या पढ़ें ही नहीं, हम क्या बोलें, क्या सोचें, कैसे सपने देखें, इस पर भी बेटियाँ अहिर्निश माँ की चौकस पहरेदारी अनुभव करती रहती हैं। दो मनुष्यों की तरह मित्रवत अपना हर सुख-दुख वे बाँट नहीं पातीं।

और यहीं पर टकराव का बिंदु उभरता है। जब एक स्वतंत्र चेतना का सहज विस्तार परम्परा की ज ता से जा भि ता है। सबसे परे माँ एक हा माँस का कैसा मनुष्य है, उसके अंतर्मन में कही-अनकही कितनी व्यथा, कितनी ललकभरी हसरतें पैठी हैं और उसके कहे के पीछे क्या गूढ़ संकेत दिपदिपाते हैं, यह बात कितनी बेटियाँ जान पाती हैं? समय रहते -

'....वे अब , संसार हो गये हैं
छोटे-छोटे बच्चे
जो मेरी आँखों में खेलते थे
और
आँखों में ही सो जाते थे , वे बच्चे
अब संसार हो गये हैं।'

(अमृता भारती)

एक रचनाधर्मी माँ का जीवन परंपरा से लगभग मुक्त होता है इसीलिए वह अपनी बेटियों को भी ग्लानि और परंपरा के पथरायेपन से मुक्त कर पाती है और एक बुद्धिमती, संवेदनशील बेटी जल्दी ही देख पाती है कि मानवीय रिश्तों और सामाजिक व्यवहार को लेकर माँ उसे जो आचरण संहिता पालन करने के लिए दे रही है, खुद उसका निजी जीवन और लेखन उसका कैसे उल्लंघन करता है। माँ तथा पिता का दाम्पत्य जीवन और उसके विविध पहलू, माँ की रचनाओं में से सुनाई देती स्वायत्तता की अ-स्त्रियोचित ध्वनियाँ और माँ के सामाजिकता से सार्वजनिक और वैयक्तिक रिश्तों की भिन्नता सब ज्यों-ज्यों पुत्री के आगे स्पष्ट होते हैं, वह स्त्रीत्व के नये कोंण, नई गहराइयाँ देख पाती है। यह मेरा निजी अनुभव है।

मेरे मातृत्वकाल के आते-आते मेरी माँ के समय से हमारा समाज काफी बदल चुका था लेकिन फिर भी आमतौर से खाते-पीते मध्यवर्गीय घरों में स्त्रियों को ताउम्र एक कीमती थाती और गु यानुमा ल की ही माना और बनाया जाता था। वर्जीनिया वुल्फ़ के ये शब्द मेरी समवयसा भारतीय महिलाओं के लिए भी अक्षरशः लागू होते थे -

'....औरतों के बारे में जानकारियाँ एकदम नगण्य हैं। औपचारिक इतिहास भी हर जगह पुरुष आनुवंशिक परंपरा की ही गाथा है, मातृवंश की नहीं। पिताओं के बारे में हम जानते हैं कि वे सैनिक थे या जहाजी या अमुक ओहदे पर विराजित थे वगैरह लेकिन हमारी माँओं या नानी-दादियों के बारे में उपलब्ध जानकारियाँ क्या हैं? बस यही कि उनके नाम क्या थे, उनकी शादियाँ कब किन खानदानों के कौन-से पुरुषों से हुईं और उन्होंने कितने बच्चे पैदा किये....।'

शायद यही वजह है कि मेरे अधिकतर पूर्ववर्त्ती तथा हमउम्र पुरुष लेखकों-कवियों की रचनाओं में माँ या दादी-नानी की छवि मुझे प्रायः उनके (कठोर अंतर्मुखी और अनुशासनप्रिय) पिताओं से एकदम भिन्न एक सरल, भोली और भयार्त बच्ची सी-ही दिखाई देती है। अमरकांत की रचना 'दोपहर का भोजन', मोहन राकेश की 'आर्द्रा', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', ज्ञानरंजन की 'पिता' जैसी रचनाओं में माँ के किरदार इस पारंपरिक दृष्टि का प्रमाण हैं लेकिन इसके अपवाद भी हमें मिलते हैं। कृष्ण बलदेव वैद की 'उसका बचपन', कृष्णा सोबती की 'ऐ ल की', मन्नू भंडारी की 'आपका बंटी' - जैसी रचनाओं में माँएँ हिन्दी साहित्य के पारंपरिक मातृत्व के इकरंगी क्षीण कलेवर से मुक्त हैं। उनके अपने स्वतंत्र विचार हैं, इच्छाएँ और स्मृतियाँ और अभिव्यक्ति के ढ़ंग हैं, जो मातृत्व के परे उनके जीवन की पूरी परिधि में, खूब दूर तलक ले जाते हैं।

महिला-मुक्ति आंदोलन के विभिन्न मो ों तथा उससे जु े किरदारों के मास-मीडिया में किये जा रहे सपाट और उद्धत चित्रण आज आम लोगों को प्रायः विरक्त करते हैं। वजह यह कि अभी भी इस दिशा में लगभग नगण्य ध्यान दिया जा रहा है कि सचमुच की स्त्रियों के अपने मुख से बताये अनुभवों, उनके पत्राचार, आत्मकथ्य तथा डायरियों के माध्यम से एक स्त्री के अपने ही रक्तमाँस की बेटी से कैसे रिश्ते होते हैं, उसे खोजा तथा लिपिबद्ध किया जाए। एक स्त्री का व्यक्तित्व और कृतित्व (चाहे उसकी संतान हो या अन्य रचनात्मक कार्य) जितनी गहराई से अपनी माँ से प्रभावित होता है, उतना किसी अन्य पात्र या ऐतिहासिक घटनाक्रम से नहीं।

नारी सशक्तिकरण

ज्योति कालरा 'उम्मीद'

मैंने पचीसवें घंटे का
आविष्कार कर लिया है
और अपने दो हाथों में
सौ हाथों का विस्तार कर लिया है।
हीन भावना को होम कर
अभावों से नित जूझकर
उन्हें प्रभावहीन कर दिया है
और जीवन में नवजीवन का
संचार कर लिया है।

स्वयं से मित्रता निभाने का
स्वयं ही से संकल्प कर लिया है।
हृदय है वात्सल्य और
ममता से पूर्ण
मस्तिष्क विचारों से सम्पूर्ण
सहर्ष संघर्ष के लिए
हूँ सदैव तत्पर।

श्राद्ध

डॉ. सुशील कुमार फुल्ल

पुत्र ने पिता का आकार लेना शुरू कर दिया था।

उसका बिस्तर दालान में कर दिया गया था। पूरा आँगन उखा दिया गया था। और बाथरूम आँगन के उस पार था, प्रवेश-द्वार के साथ। टाँगें बेजान हो रही थीं, और फिर टखनों का दर्द। कराह में भी प्रफुल्लता कौंध गई।

वाह! वाह! कहते प्रशंसक मानों कब्रों में से उठ ख े हुए थे। हाकी हो या फुटबाल, कबड्डी हो या वालीबाल...कोई भी टीम उसके बिना अधूरी थी। एक जनून था खेल का...अपने प्रदेश का नाम बुलन्द करने का। जवानी का जोश था, पता ही नहीं चला कब हड्डियों में क्रैक आ गए...टखनों से घुटनों तक बस दर्द ही दर्द का अहसास। जब तक खून गर्म था कुछ भी नहीं महसूस हुआ.... एक टीस और जु गई थी।

राष्ट्रीय टीम का चयन होना था। कुमार का चयन तो लगभग निश्चित था। फुलबैक के रूप में वह दीवार बन जाता था। किसी को अपना दुर्ग भेदने ही नहीं देता था...भले ही कलाबाजियाँ खाता हुआ कोई कितना भी फ फ ाता। ट्रायल्स के लिए दिन मुकर्रर था परंतु बारिश को भी इसी दिन होना था। पूरा ग्राउन्ड पानी से भरा था और चयनकर्त्ता टीम फाइनल करने पर अ े थे। खिला ियों ने कहा भी ट्रायल्स अगले दिन कर लेना लेकिन चयन-समिति के पास वक्त कहाँ। अध्यक्ष ने कहा - किसमें कितनी क्षमता है यह हमें मालूम है। बात राष्ट्र की अस्मिता की है। टीम तो चुनी ही जाएगी। ट्रायल्स तो एक औपचारिकता मात्र है।

कुमार भ क उठा था। यदि ट्रायल्स केवल औपचारिकता मात्र हैं, तो उन्हें बुलाया ही क्यों गया? यदि सबकुछ इसी ढ़ंग से होता है तो इसका लाभ ही क्या है?

अध्यक्ष ने उसे फुसलाते हुए कहा भी था - कुमार तुम्हारा चयन तो निश्चित है। तुम क्यों अपना चांस खराब करते हो? विदेश जाने के अवसर बार-बार तो नहीं आते।

'अच्छा' कहकर उसने चयन-समिति के अध्यक्ष को खींच लिया था। कहा था - तुम मुझे फुसलाना चाहते हो? जाएगा वही जो ट्रायल्स देगा। मैं देखता हूँ बिना ट्रायल्स आप टीम कैसे एनाउंस करते हैं।

अधिकारी शांत रहा, मात्र इतना बोला - कल चार्टर्ड फ्लाइट है, इसलिए। फिर उसने एक सूची कुमार को दिखाई थी जिसमें पहले पाँच खिला ियों में कुमार का नाम भी था।

अगले दिन जो सूची समाचार-पत्रों में छपी, उसमें कुमार का नाम ही नहीं था। वह बिफर उठा था, छटपटाया भी...यही वह क्षण था जब उसने खेलों से सन्यास ले लिया था...बस...अब टखनों से घुटनों तक की टीस रह गई थी।

उसकी साफगोई तथा ईमानदारी की प्रशंसा चारों तरफ थी परंतु घर में मायूसी छाई थी। पिता ने कहा - इतने वर्षों तक टखने तु वाते रहे और अब अवसर आया तो चूक गए। अब तुम्हारी जगह वेवल जाएगा।

'फिर क्या हुआ? मैं गया या वेवल...एक ही बात है। कोई फ़र्क नहीं प ता।'

फ़र्क क्यों नहीं प ता? पहले उसे नौकरी दिलवाने के लिए तुमने इन्टरव्यू ही नहीं दिया और अब विदेश जाने का अवसर था, तो खुद सलीब पर लटक गए।

ज्ञान उसका जिगरी दोस्त था। अँग्रेज वॉयसराय वेवल की तरह उसकी एक आँख खराब थी इसलिए सभी उसे वेवल कह कर ही बुलाते थे।

पिता ने फिर कहा - तुम हर बार गुलज़ारीलाल नन्दा ही क्यों बनना चाहते हो। दरियादिली अच्छी होती है परंतु कभी अपना भी सोचना चाहिए।

'अपना भी सोच लेंगे।' फिर उसने सताये बिच्छू की तरह पलट वार करते हुए कहा - आपने तो ज़िन्दगी भर न अपना सोचा, न अपने परिवार का। अपने भाइयों को ही इधर-उधर फिट करते रहे। और घर का पालन-पोषण....सोना बेच-बेचकर पलटन का पेट भरते रहे।

'तुम बिल्कुल ठीक कहते हो। अब तो सबकुछ फिसल गया है।' एक उदासी, कोहरा फैल गया था इर्द-गिर्द। आठ बच्चों का परिवार...स्कूल की नौकरी। रिटायरमेंट तक पहुँचते-पहुँचते कहीं दो सौ रुपये वेतन। वैसे बाप-दादा का सबकुछ था...खेत ही खेत, साहूकारा...फिर गाँव में

उन्चास-पचास मकान....भरा-पूरा तबेला....चार-चार दुधारू पशु, घो ा-गा ी, ऊँट और सवारी के लिए सफेद घो ी जिस पर चाचा जाता था उगाही के लिए। कितना कारोबार था, मुसलमान तथा दूसरे लोग कितने ही देनदार थे। इतना ब ा परिवार....आज सोचने में भी अजीब लगता है - पंद्रह बहन-भाई....फिर उनके आगे पाँच-पाँच सात-सात....हवेली में पूरा संसार बसता था।

सरदारीलाल भाईयों में सबसे ब ा था....चारों ओर चर्चा थी....साहूकार का एक बेटा लुधियाना के सरकारी कॉलेज में पढ़ने गया है। जाना तो विलायत था परंतु सात समुद्र पार करना... बाप रे....! फुटबाल उसका भी प्रिय खेल था। वह भी कॉलेज और युनीवर्सिटी की टीम में जाता था। खेल की वही भावना संभवतः कुमार को खून में मिली थी लेकिन अन्याय सहन करना दोनों की फ़ितरत में नहीं था।

माछीवा ा के जंगल की तरह वह बीह गाँव था। बाहरी दुनिया से एकदम कटा-फटा और जब सरदारीलाल दूर ब` शहर में पढ़ने गया तो सब तरफ डंका बज गया। शहर की थो ी हवा लगी तो उसने अपने पिता से कहा - हमें गाँव से बाहर निकलना चाहिए। कहीं और भी ज़मीन खरीद लेनी चाहिए।

पिता ने इतना भर कहा था - इतना कारोबार है। परमात्मा का दिया यहीं सबकुछ है। बाप-दादों ने इतना कुछ बना दिया है कि सात पुश्तें तो आराम से खा सकती हैं।

किसी बुज़ुर्ग ने बाहर निकलने का प्रयत्न ही नहीं किया लेकिन सरदारीलाल में एक त प जरूर थी। शायद यही कारण था कि वह परिवार सहित बाहर चला गया था। जब तक लुधियाना में पढ़ता था अपने भाइयों को वहाँ बुलाता रहा ताकि वे शहर की हवा से परिचित हो जाएँ। उसके दो भाइयों ने ही दसवीं तक की पढ़ाई की थी। एक को वह बम्बई मेडिकल कॉलेज में दाखिल करवा आया और दूसरे को कलकत्ता के इन्जीनियरिंग कॉलेज में। बंबई वाला चुपचाप सेना में भर्ती हो गया और कलकत्ते वाला सुभाष बोस की इण्डियन नेशनल आर्मी में।

गाँव में हवेली थी....और बहुत से मकान थे जो या तो बुज़ुर्गों ने खुद बनवाए थे या फिर कुर्की में मिले थे। साहूकारा भी क्या धंधा था, बही-खातों में ब्याज बढ़ाते रहो, हुक्का गु गु ाते रहो और जोंक बने रक्त शोषण करते रहो, अपना घर भरते रहो। फिर मन में ख्याल आया - बैंक भी तो साहूकार का ही प्रतिरूप हैं। ब्याज कमाते हैं और कुर्कियाँ करवाते हैं। व्यवस्था का चेहरा ही बदला है, आत्मा तो वही है...प्रताि त का शाश्वत शोषण। शोषण शब्द के कौंधते ही सरदारीलाल का मुँह बकबका हो गया है। साम्यवाद के प्रहरी बनकर भी लोग शोषण करते हैं। दूसरों के लिए नारे और अपने लिए बल्ख-बुखारे।

नई हवा लगी थी....तो उन्होंने भी सोचा शहर में थो ी ज़मीन खरीद ली जाए। सन् तीस-पैंतीस का समय था। आठ आने गज़ सौदा हो गया। चेहरे पर खुशी झलक आई थी। उसी शाम गुरदयाली के पिता से बात की जो वहीं लुधियाना में रहता था तथा दूर-पार से रिश्तेदारी में था। प्रतिक्रिया कुछ और ही थी - अरे ! यहाँ क्या करोगे? गाँव में कितनी ज़मीन-जायदाद है। नगर में बसना कोई अच्छी बात नहीं। यहाँ तो मक्कारी, चोर-बाजारी फलती-फूलती है। यह भी हो सकता है कि तुम्हारी ज़मीन पर कोई और ही भवन ख ा कर ले।

और वह भौंचक्क। आठ आने गज़ ज़मीन....और अब अस्सी हजार रुपये गज़। वह टुक ा गुरदयाली के पिता ने ही अपने नाम करवा लिया था। और सरदारीलाल पढ़-लिखकर गाँव वापिस आ गया था। नौकरियाँ तो बहुत मिलतीं परंतु माँ-बाप करने ही न देते, कहते इतने पैसे तो हम अपने मुनीम को देते हैं। सो कप` की दुकान खोल दी। उसके जिन भाइयों को लुधियाना की लत प गई थी वे घर से पैसा चुराते और सट्टा-मंडी में लगा आते। सुना था सट्टा किसी को भी तबाह कर देता है। परंतु सुरजन का तर्क ही कुछ और था - भाग्य का दूसरा नाम ही सट्टा है। परमात्मा ऐसा चाहता है तभी तो मैं इसमें धन लगाता हूँ। मैं तो उस परमपिता के हाथ में कठपुतली-मात्र हूँ। क्या पता कब भाग्य जाग उठे? बारह साल बाद तो घूरे के दिन भी बदलते हैं। लेकिन उनके दिन कभी नहीं बदले। परिवार बढ़ता गया और वह पुरुखों की कमाई से खिलवा करता रहा।

कप` की दुकान चलने लगी तो छोटे भाइयों ने कहा - तुम तो पढ़े-लिखे हो, कहीं नौकरी कर लो। यदि दुकान ही करनी थी तो पढ़ने-लिखने की क्या जरूरत थी।

'पढ़ने-लिखने का अर्थ है अच्छा इंसान होना।'

'हम तो ढ़ोर हुए न।'

'मैंने ऐसा कब कहा?'

'तुम्हारा क्लासफैलो बलदेवसिंह दिल्ली में डिफेन्स मिनिस्टर बन गया है। उससे मिलकर कोई अच्छी-सी नौकरी ले लो और हम दुकान चलाते रहेंगे।'

हर रोज़ की तकरार-इसरार। वह बलदेवसिंह के पास तो नहीं गया लेकिन जहाँ भी किसी नौकरी के लिए प्रार्थनापत्र दिया वहाँ से आमंत्रण आ जाता परंतु वेतन इतना कम होता था कि ज्वाइन करने का मन ही न होता। परंतु जब लुधियाना कॉलेज के पाँच-छः क्लासफैलोज़ को शिमला के एक ही स्कूल में नौकरी मिल गयी तो सरदारीलाल भी वहाँ चले गये। उन दिनों शिमला के लिए कालका से सिर्फ़ टैक्सियाँ चलती थीं, कभी रास्ते में चक्का लगाना प जाता तो सरदारीलाल इसका अफ़साना बना देता। और फिर पहा पर खटमलों का आतंक सरदारीलाल को कभी नहीं भूला। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक नौकरी शिमला में ही रही।

फिर जब दोस्तों का काफ़िला वापिस चला तो सभी कैथल के सनातन-धर्म स्कूल में चले गए। दोस्तों में बहस भी होती लेकिन सब एक-दूसरे को बेहद चाहते थे। कभी प्रसंग चलता तो कुमार अपने पिता पर व्यंग्य कसते हुए कहता - क्या बंजारों की तरह भटकते रहे। जेब में सरकारी नौकरी के ऍप्वाइन्टमेण्ट लेकिन आप फँसे रहे प्राइवेट स्कूलों में ही।

कुमार के शब्दों में अस्वीकार एवं दुत्कार की गंध आती थी।

'सरकारी और गैर-सरकारी तब एक जैसे ही होते थे। बराबर वेतन मिलता था। हाँ, पेंशन का फ़र्क था।'

कुमार फट प ा था - चौबीस साल हो गए आपको रिटायर हुए, इतने वर्ष पेंशन के बिना... सरकारी नौकरी में रहे होते तो कितना पैसा मिलता...सीपीएफ भी जो मिला था....कितना था... पाँच हजार। हर माँ-बाप अपने बच्चों का भविष्य सुरक्षित करना चाहते हैं, और आप खुद ही बच्चों पर पहा से बैठ गए।

पिता की आँखों में असहाय भाव उतर आया था। शायद कहना चाहा - तुम्हें तो पेंशन मिलेगी न, देख लेना कितना सुख मिलता है। संतान अच्छी हो तो ही सुख है, न हो तो... सरदारीलाल को लगा उसका चवर्खा रचाया जा रहा था....कौवे पत्तलों पर चोंच मार रहे थे परंतु उन पर अन्न का कोई दाना नहीं था।

x x x x

शायद कुमार ठीक ही सोचता है। रिटायरमेंट के चौबीस वर्ष बाद तक जीना और वह भी बिना पेंशन के....आह ! बच्चों के लिए कितना कष्टदायक होता है। आदमी अपनी संतान पर पैसा खर्च करे या माँ-बाप पर। वैसे भी एक उम्र के बाद माँ-बाप अपने कहाँ रहते हैं....वे तो बोझ हो जाते हैं। कुमार कहता - सन्यास-आश्रम की परिकल्पना इसी यथार्थ का प्रतिफलन तो है। उन्हें डेरे में ही रहना चाहिए....डेड वुड।

वह ताँबे की तरह तमतमा रहा था। फुँफकारा - देख लिया अपने ला ले का दुलार.... हीरा-मोती कहते नहीं अघाते थे। बेटे ने माँ-बाप को घर में प्रवेश ही नहीं करने दिया। कैसा लगा आपको स क के किनारे बैठना।

'इसमें हमारा क्या दोष है? हम तो डेड वुड हैं। काश ! हम खुद ही अपनी चिता सुलगा पाते।' गहरा निःश्वास लेकर सरदारीलाल ने कहा।

'लोग आत्महत्या भी तो कर लेते हैं।'

'तुम ठीक कहते हो। स क के किनारे बैठना भी तो आत्महत्या करना ही था। कितनी डींग मारता था...ऊपर बनवा दिए हैं दो कमरे, अलग एवं स्वतंत्र। शांति से रहना। और जब वहाँ पहुँचे तो स क के किनारे बिठा दिया। तुम तो उसकी आदत जानते ही थे लेकिन फिर भी हमें वहाँ ले गए। बूढ़ों से सभी छुटकारा पाना चाहते हैं लेकिन यह भूल जाते हैं कि सभी ने वहाँ तक पहुँचना है।' पिता दार्शनिक हो गए थे। अब उन्हें ज्यादा महसूस नहीं होता था क्योंकि यह झकझक हर रोज़ की बात थी और बेटे थे कि बोलने में कोई लिहाज़ नहीं करते थे।

'मेरी ही गलती थी। एक तो पाँच सौ रुपया टैम्पो वाले को दिया दूसरे मुझे ही उलाहना। कुछ तो रहम करो.... किराये का मेरा घर .... दो कमरे, छोटा-सा आँगन ..... रेल के डिब्बों-सा घर.... तुम्हारे लिए आँगन में टीन का छप्पर ही डाल देता.... यही हो सकता था।'

'कुमार क्यों इतना दुखी होते हो? बस थो ा ही समय शेष है। फिर उ न-छू और तुम लोग स्वतंत्र। वास्तव में हमें पहले ही किसी वृद्ध-आश्रम में चले जाना चाहिए था, परंतु आज नहीं जा सकते.... वहाँ भी एकमुश्त रकम माँगते हैं। आश्रम तो अब नाम के ही हैं.... बाकी यश एवं धन अर्जित करना ही उनका काम है। चलो कुछ सोचेंगे।'

'सोचना क्या है? ऐसे ही मेरे कंधों पर झूलते रहोगे।' कुमार ने निर्लज्जता से कहा।

छोटी ने घर में इसलिए प्रवेश नहीं करने दिया था क्योंकि सरदारीलाल की खाँसी में घुल्फे निकलते थे.... उसके छोटे-छोटे बच्चे.... कहीं उनको कोई बीमारी लग गई तो.... माँ-बाप अछूत हो गए थे।

माँ ने तो कहा भी था - कुमार, मैं वहाँ जाना ही नहीं चाहती। तुम नहीं रखना चाहते तो हमें कहीं जंगल में छो आओ।

वास्तव में छोटी के पास उनके अनुभव ही इतने क वे थे कि जाने का मन हो ही नहीं सकता था। जब भी वे बाजार से कुछ खाने के लिए लाते तो दबे पाँव अंदर वाले कमरे में चले जाते और माँ-बाप के कमरे का दरवाजा बाहर से बंद कर देते। माँ की इच्छा होती समोसा व जलेबी खाने की, परंतु उन्हें तो पहले ही बाहर से बंद किया होता। बढ़ती हुई उम्र के साथ दूध का रिश्ता भी भूल जाता है।

बूढ़े माँ-बाप। पुत्र का घर। चार घंटे बाहर स क के किनारे बैठे रहना। साँस का फूलना.... और फिर गली में से किसी औरत का चाय बनाकर लाना.... अमृत-दात्री वह अजनबी औरत.... उनके माथे पर विवशता और बेबसी स्पष्ट झलक रही थी परन्तु कोई निस्तार नहीं था।

समय की तलवार ने उन्हें लहूलुहान कर दिया था।

x x x x x x x x x

पीछे दालान में बैठे कुमार ने फिर आवाज लगाई - कमला... कमला... ममता... ममता... घर में कोई नहीं है क्या? कहाँ चले गए सब लोग? साँस फूलने लगा था। कहीं मसाना ही न फूट जाए.... वह पानी पानी हो रहा था।

आँगन में काम कर रहा मज़दूर उनके नज़दीक आया और बोला - मास्टर जी, क्या बात है? घर वाले तो शायद पुजारी के पास गए हैं। आपने यह घर खरीदा है न। सभी बहुत खुश हैं। मुझे बताओ, क्या चाहिए?

'मैंने बाथरूम जाना था।'

'चलो, मैं ले चलता हूँ.... मुझे पक लो' बाथरूम आँगन पार दूसरे कोने पर था जबकि दालान एकदम पीछे। और सारा आँगन उख ा प ा था।

वह कंधा पक साथ-साथ चले लेकिन दो-चार डग भरने पर ही उनका पेशाब हो गया। पता नहीं कब से रोके हुए थे। कुमार सकुचाया , मानो कोई ब ा अपराध हो गया हो, लेकिन बुज़ुर्ग कामगर ठहरा हुआ आदमी था। बोला - कोई बात नहीं। शरीर स्वस्थ न हो तो बेबसी होती है। आप तो फिर भी हिम्मत वाले हैं.... लकवे की मार सहने पर भी चल लेते हैं। चलिए, मैं आपको कुर्सी पर बिठाता हूँ.... पानी लाकर आपकी टाँगें भी धुलवा देता हूँ.... आपके कप े भी बदलता हूँ।

संवेदना का संस्पर्श पाकर कुमार फफक उठा। असहाय, असमर्थ को कौन देखता है। उन्हें लगा वह सरदारीलाल हो गए.... और उनका कमरा बाहर से बंद कर दिया गया था।

कुमार को रिटायर हुए भी कुछ वर्ष हो गए थे परंतु उन्हें इसलिए अहसास नहीं हुआ क्योंकि उनका कलाकार अभी भी जीवित था.... लेकिन अपने लिए घर बनवाने के लिए एक टुक ा ज़मीन नहीं खरीद सके थे। वर्षों तक अखबारों में पार्ट-टाइम काम करते रहे.... कार्टून बनाते, परंतु कभी कोई पैसा नहीं मिला। 'मेहनत' अखबार शुरू हुआ तो सम्पादक-स्वामी-प्रकाशक ने आश्वासन दिया - जरा चल प े, फिर ज़मीन का टुक ा लेकर मैं दूँगा..... नगर-परिषद् के कोटे से भी मिल सकता है .... लेकिन कुछ वर्षों के बाद अखबार बेचकर मालिक तो एक अखबार में सम्पादक होकर चण्डीगढ़ चला गया और कुमार.... फिर वैसे का वैसा....

एक ही मलाल रहा कुमार को. . . .पिता ने उसे जे.जे.स्कूल ऑफ आर्टस्, मुंबई में क्यों नहीं भेजा. . . .नहीं तो वह भी हुसैन बन सकता था. . . .और अमर हो जाता।

किराये के मकान में सारी उम्र निकाल दी। कभी तंगी महसूस ही नहीं की। और फिर यह भावना की बात है। अब उसके बेटे को लगता है. . . .सिर पर अपनी छत तो होनी ही चाहिए। यह जगह तो बहुत तंग है। माँ-बाप न होते, तो मियाँ-बीबी का गुज़र-बसर हो जाता. . . .पहले बीस-पच्चीस साल दादा बैठा रहा. . . .और अब ये. . . .

उसकी माँ ने ही अपने पति से कहा था - 'अब तो कोई घर खरीद दो। सारी उम्र ऐसे ही कट गयी।'

'मेरे पास जो पैसा है, वह ले लो और खरीद लो।'

'तुम्हारी बीमारी ही सारा पैसा खा गयी. . . .इतने में तो ज़मीन ही खरीद लेते।'

'बीमारी कोई मुझे पूछकर तो आई नहीं। तुम्हें यह खुशी नहीं कि मैं बच गया. . . .तुम्हारी नज़र तो मेरे पैसे पर है। इलाज़ मैंने अपने पैसे से करवाया है, किसी से तो नहीं उधार लिया।' फिर क्रुद्ध कर कहा - 'तुम चाहती हो मैं सारे रिश्तेदारों से ऋण लेकर तुम्हारे लिए आलीशान कोठी बनवा दूँ. . . .मैं ऐसा हरगिज़ नहीं करूँगा।'

'सभी अपने बच्चों के लिए कुछ न कुछ तो करते ही हैं। पीना-पिलाना ही छो देते, तो भी कितना पैसा बच जाता।' धर्मपत्नी ने अपने पुत्र की भाषा में कहा।

पुत्र व्यंग्यात्मक मुद्रा में हँस प ा।

'तुम बचा लेना, बना लेना महल। तुम तो राधा-स्वामी हो न, बीबी के कहने पर। मैं जो कर सकता था, मैंने किया। मैंने तो पीने-पिलाने में खो दिया. . . .तुम मत खाओ-पिओ. . . .एक टाइम खाकर गुज़ारा कर लेना। मैं तो कोल्हू का बैल बना रहा हूँ। रिटायरमेंट के बाद भी काम करता रहा हूँ, और तुम दस भी पास नहीं कर सके। उन्हें चोट पहुँची थी। बोले - जो मज़दूर दिनभर कारखाने में खपता-मरता है, वह यदि थकान दूर करने के लिए दो घूँट. . .दवाई की मानिंद भी ले. . . . तो भी अमीरों के पेट में सलवटें प ने लगती हैं और खुद ड्रम के ड्रम डकार जाते हैं।

जो भी घर में हालचाल पूछने आता, नसीहत पर नसीहत देने लगता। लकवा क्या मार गया कि कुमार को लगा, वह परवश हो गया। चलने के लिए मोहताज। पहले तो ज़बान भी ल ख ाने लगी थी, मुँह टेढ़ा हो गया था परंतु समय पर इलाज़ होने से सब ठीक हो चला था। एक दिन वह आ गया था. . . .हंस, बचपन का दोस्त. . . .वह केशधारी था परंतु जब दोनों बैठते तो दो बोतलों के साथ सौ-पचास सिगरेट भी फूँक डालते जैसे लोहा लेना हो। इस बार हंस ने भी कहा - थो ी कम कर दो।

'तुम तो जानते हो सारी उम्र मेरी बोतल मेरी चारपाई के नीचे रही है। अब बाथरूम क्या जाता हूँ कि पीछे से यह लोग उसमें पानी उ ेल देते हैं। मैंने सारी उम्र पी है, ये सोचते हैं इसे पता नहीं चलता. . . .मेरी तसल्ली नहीं होती।' वह अपनी क क आवाज़ में बोला था।

अँधेरा उतरने लगा था और गली में कुत्ते रिरियाने लगे थे।

x x x x

टखनों से घुटनों तक दर्द ही दर्द, ऐसी टीस उठती कि उसका मन चीत्कार करने को होता।

वह पीछे दालान में बैठा था। परिवार के बाकी सदस्य टी.वी. वाले कमरे में ठहाके लगा रहे थे। उसे लगा कोई उसके पास आकर बैठ गया था. . . .शायद सरदारीलाल ही था. . . .उसका पिता या शायद दादा. . . .दालान में ठहाका गूँज उठा. . . .कुमार ने डरकर इधर-उधर देखा. . . .उसे आहट तो सुनाई दे रही थी लेकिन कोई आकृति साकार नहीं थी। फिर वह अपनेआप से ही बोला - ससुरों को कितनी बार कहा है, बाप-दादा के श्राद्ध तो कर दो. . . .क्या पता आत्मा भटकती रहती हो? वह अनास्थावादी नहीं था परन्तु पाखण्ड से भी दूर भागता था। कभी मंदिर नहीं जाता था लेकिन मंदिर के पास से गुज़रते ही उसका सिर झुक जाता तथा हाथ जु जाते थे।

जब सरदारीलाल बीमार हुआ था तो वह सेन्ट्रल टाउन की सात नम्बर गली वाले मकान में ही रहता था। रेल के डिब्बे जैसा मकान। और पिता का कमरा अंतिम कमरा था, जो दरअसल बाहर जाने के लिए रास्ता था। सर्दियों के दिन थे। जब कोई दरवाज़ा खोलता, तो चीरती हुई हवा आती। एक दिन सरदारीलाल ने कहा भी था - कुमार मेरा बिस्तर कहीं और कर दो। ठण्ड लगती है।

'अपने सिर पर कर दूँ।' वह कुढ़ कर बोला था। पिता चुप हो गए थे। शायद एक उम्र के बाद माँ-बाप का कोई अर्थ नहीं रहता....अगली पीढ़ी में आदमी सम्मोहन ढूँढ़ता है....यह सिलसिला चलता रहता है....मोह-भंग....आत्म-सम्मोहन....फिर स्वप्न का स्खलन।

ठण्ड उतरने लगी थी....सारी उम्र किराये के घर में और अब कहीं जाकर तीन मरले का खोला मिला है पाँच लाख रुपए में....उम्र भर की कमाई लग गई और कर्ज़ा भी चढ़ गया....बिना दरवाज़े का दालान....चीरती हुई हवा....वह सिकु कर लेट गया....दालान के लिए बल्ब भी अभी नहीं आया था....अंधकार में लेटा वह बुज़ुर्गों की फिल्म देख रहा था....कभी आँसुओं से भीग जाता....और कभी भय से अक जाता।

उसे लगा तभी कोई दालान में आया। उसके शरीर को टटोलने लगा....मानों कुछ ढूँढ़ रहा था....एक ह ब ी....एक बेरहमी....वह अर्द्धसुषुप्तावस्था में लेटा रहा....मानों कोई शव प ा हो....उसने सोचा - जीते जी शव हो जाना....आह ! ज़िन्दगी भी क्या नाटक है?

टटोलना खत्म हुआ....वह फिर अकेला था....टखनों से घुटनों तक फिर दर्द उभरने लगा। वह अपनी क क आवाज़ में बोला - कहाँ मर गये सब लोग? कोई सुनता ही नहीं।

कुमार की पत्नी भी अगली पीढ़ी के साथ बैठी टी.वी. का आनंद ले रही थी....और बीच-बीच में अपने बेटे को समझा रही थी - यह शरीर तो नश्वर है। पिंजरा है मोहपाश का। सबको यात्रा पर निकलना प ता है....कब, कहाँ, कौन जाने?

गली में कुत्ते रिरियाने लगे...बिल्लियाँ आर्त्तनाद करने लगीं...कमला बोली - पता नहीं किस की आ गई...वह उठी, दालान की तरफ जाने लगी, फिर क्षण भर को ठिठकी...और वहीं बैठ गयी!

गीत

जवाहर इन्दु

एक दिन दीपक जलाने से सवेरा कब हुआ है
ज्योति जीवन की जलाओ, हर उजाली रात हो.
जो अँधेरा आवरण है
इस धरा पर, काट दो
खाईयाँ जो बन गई हैं
एकता से पाट दो
हर कुहासे को भगा दो, फिर न काली रात हो
ज्योति जीवन की जलाओ, हर उजाली रात हो.
स्वार्थ में डूबा हुआ है
आज का हर आदमी
बो रहा है नित अँधेरा
खोजता है रोशनी
बीज आशा के गिराओ, स्वर्णबाली रात हो
ज्योति जीवन की जलाओ, हर उजाली रात हो.
आरती की थाल में
दीपक सजा पाये नहीं
एक दिन के सौ नमन से
देवता आये नहीं
नित्य हो अर्चन, निवेदन, स्नेह थाली रात हो
ज्योति जीवन की जलाओ, हर उजाली रात हो.
एक दिन के जागरण से
उम्र भर कैसे जगोगे
एक पल की रोशनी से
क्या उजाला भर सकोगे
शून्य का विस्तार ले लो, अंशुमाली रात हो
ज्योति जीवन की जलाओ, हर उजाली रात हो.

पार्टी

ममता खरे

उसे देख कर भले ही आप उम्र का अनुमान लगा लें पर पल्लवी की तरह यह ज़रूर कहेंगी 'ओः शी इज़ सो ग्रेसफुल। सो लाइवली' ---- 'मिसेज खरे को देखकर कौन कहेगा कि सेन्ट्रल बैंक मेन ब्रांच की मैनेजर हैं।'

---'रियली?' श्यामला को विश्वास नहीं हुआ। सुजाता के घर वो पहली बार आई थी। रिया की फ्रेन्ड थी।

---'ओ यस। सुजाता की फैमिली उधर मेज़ पर बैठी है।'

---'उनके हसबैण्ड?'

---'वह हैं न, मेज़ के पास। ख -ख बातें कर रहे हैं---व्हाइट हेयर, टॉल मैन---इन ब्लैक सूट।' श्यामला ने गौर से मिस्टर खरे को देखा। लाइम जूस का सिप लेते हुए बोली---'ए हैण्डसम मैन---वेयर इज़ योर सुजाता? मैं तो अभी उनसे मिली ही नहीं----'

रिया ने गर्दन घुमा-घुमाकर भी में सुजाता को ढूँढ़ने की कोशिश की।

सुज़ाता की यह बर्थडे पार्टी स्वराज्य होटल के गार्डन में मनाई जा रही थी। रिया को लगा, पाँच-छः सौ लोग जरूर होंगे। गार्डन बहुत ब ा है इसीलिए शायद कन्जस्टेड नहीं लग रहा है।

बैरा ट्रे में स्नैक्स लेकर आया तो दोनों ने साल्टेड काजू उठा लिए।

रिया जो सोच रही थी, वही बात न सही, कुछ हटकर ही, श्यामला भी सोच रही थी। बर्थडे, वह भी पैंसठ साल की बुढ़िया का, इस तरह से लैविशली मनाने की जरूरत क्या है? अरे भाई, कोई ब ा पोस्ट मिल गया होता तो बात कुछ समझ में आती है।

रिया सोच रही थी 'बात कुछ है जरूर। सिर्फ़ सूजी का बर्थडे ही ओकेज़न न होगा। सनी को बिजनेस में फायदा हुआ होगा या बेटी लवली का एन्गेजमेण्ट----क्या पता सबकुछ इतना सीक्रेट-सीक्रेट-सा लग रहा है।'

श्यामला यहाँ किसी को नहीं पहचानती थी। वह तो रिया ने जब न आने की असमर्थता जताई थी तो सुजाता ही ने कहा था----'योर फ्रेंड इज़ माई फ्रेंड टू----प्लीज़ ब्रिंग हर विथ यू---' जयी और चन्द्रा के साथ विशाखा, प्रिया भी बैठी थीं। बातें भले ही वे लोग अपने घर-परिवार की कर रहीं थीं पर जल्दी से जल्दी इमीडिएट टॉपिक पर आ जाना चाहती थी। हैरान तो वह लोग भी थीं इस लम्बी-चौ ी पार्टी में शामिल होकर। दिव्या आ गई। कुर्सी खींचकर बैठते हुए बोली--'ओ हाय--' फिर आँख नचाकर चारों ओर देखकर मुस्कुराई ---'वाओ --- बात क्या है? सच ऐ लार्ज गैदरिंग। मैंने तो सोचा था फ्रेंडस् होंगी। ज्यादा से ज्यादा हम लोगों की फैमिली --- पर जब कार्ड पर वेन्यू देखा स्वाराज तो माथा ठनका --- क्या डेकोरेशन है यार --- ' दिव्या ने छोटे से रूमाल को थपथपाकर माथे पर उभर आया पसीना पोंछा।

अब तो सबको मौका मिल गया था --- दिव्या की बात लोक ली सबने। विशाखा ने खाली ग्लास कुर्सी के पास रखते हुए पूछा -- 'क्या सचमुच ही सुजाता जी का बर्थडे है या समथिंग और?'

'और क्या हो सकता है - बेटे का इस्टैब्लिस्ड बिजनेस है - और लवली तो अभी बहुत यंग है।'

'हो सकता है मिस्टर खरे को कोई नया एसाइनमेण्ट मिला है---'

'तब तो सुजाता जी जरूर फोन करके बतातीं---'

'यू आर राइट --- उसके पेट में तो बात रहती ही नहीं है।'

'पर इस बार जरूर रह गई है --- मैं नहीं मानती हूँ कि बर्थडे पर उसने हजारों लोगों को इन्वाइट कर डाला है।'

'हज़ारों क्या, यहाँ तो पूरा शहर ही लग रहा है --- सारे चेहरे तो जाने-पहचाने लग रहे हैं।'

'भई बात कुछ समझ में आई नहीं।'

विशाखा ब ी देर से अपनी सा ी की तारीफ सुनने को बेकरार थी। न जाने कितनी बार तो उसने सबको दिखा-दिखाकर पल्लू ठीक किया था। इस बार फिर कंधे पर सा ी का कोना जमाते हुए

बोली--'मैं तो यही नहीं समझ पा रही थी कि क्या पहनूँ? कुछ गेस नहीं कर पा रही थी कि कितने लोग होंगे। ये तो इन्होंने बताया कि दिन में खरे साहब से बात हुई थी कोई पाँच-छः सौ लोग होंगे।'

सबका ध्यान विशाखा की शिफॉन की पिंक सा ी पर चला ही गया। सुनहली जरी और सारी सा ी पर बूटी, जबर्दस्त आँचल --- महिलाओं को लुभाने के लिए काफी था।

दिव्या चहक उठी - 'ओ हो - हाउ लवली विशाखा - बहो. . .त ही प्यारी लग रही है। यू आर लुकिंग गोर्जियस यार --- ' उसे बात पूरी न करने दी चन्द्रा ने। आँचल हाथ से पक कर जरी टेस्ट करते हुए बोली --- 'असली लग रही है --- जामदानी है।'

'आई नो - मेरे पास दो हैं पर मुझे तो बहुत हैवी लगती हैं - है भी काम कुछ ज्यादा ही', कुछ ऐसे लापरवाह अंदाज से आँचल छो ा कि किसी से आगे कुछ कहते ही न बना।

अचानक जयी ने कहा - 'पैसा हो तो ठाठ दिखाना कौनसा मुश्किल काम है। उधर देखो बार ही खुल गया है।'

'मैं तो ब ी देर से मार्क कर रही हूँ शराब पानी की तरह बह रही है।'

'अरे, तुम्हारा यह नेकलेस तो ब ा ही खूबसूरत है प्रिया। पहले कभी नहीं देखा था।'

प्रिया ने रहस्यात्मक ढ़ंग से नेकलेस को छूते हुए मुस्कुराकर कहा - 'वर्षों से लॉकर में प ा था, सोचा निकाल लूँ।'

जयी फिर बोली - 'ठीक ही सोचा, ओकेज़न के लिए गोल्ड का सेट है - हर जगह पहन कर पहुँच जाती हूँ।'

विपाशा जाने कब वहाँ आकर ख ी हो गई थी। डी.एम. की वाइफ होने की वजह से हर समय उसकी नाक ऊँची ही रहती है। हाालँकि ऐसा वह नहीं उसकी फ्रेंड-सर्कल सोचती है। जयी के हार पर एक नज़र डाल विपाशा बोली - 'वाई आर यू फीलिंग गिल्टी? तुम्हारा सेट अच्छा-खासा तो है जयी। मन छोटा मत करो।'

जयी को गुस्सा आ गया -'मैं मन-वन छोटा नहीं कर रही हूँ। मैं तो यही जानती हूँ कि जो है उसपर संतोष करना चाहिए' खिलखिलाकर हँसने लगी चन्द्रा - 'वैसे थो ी देर पहले कही गई बात से ऐसा नहीं लगा था जयी। सॉरी --' जयी ने सबकी तरफ से मुँह फेर लिया तो बाकियों ने आपस में आँखों से इशारे किए। विशाखा उठकर ख ी हो गई - 'देखूँ सुज़ाता जी हैं कहाँ।'

'मैं भी चलती हूँ' कहकर चन्द्रा भी साथ हो ली।

थो ा हटकर कुछ प्रौढ़ाएँ बैठी थीं जो अपनी-अपनी बीमारियों की व्याख्या कर रहीं थीं अब तक। सुज़ाता से उम्र में दो जने ब ी ही थीं परंतु उम्र को रोक रखने में सफल थीं। कम से कम उन्हें देखकर कोई कह नहीं सकता था कि इन्हें आर्थराइटिस या स्पोन्डोलाइटिस है। बालों में कलर चढ़ाए, होंठों पर सा ी से मैचिंग लिप्सिटिक, लो-कट स्लीवलैस ब्लाउज, हाईहील सैंडिल। किसी-किसी के तो बाल कंधे तक छोटे थे। किसी ने आँखों में लेंस लगा रखे थे ताकि चश्मा उनका मेकअप न बिगा दे।

मिसेज कपूर ने अपने पैरों की पोजीशन पचीसवीं बार बदली। बोलीं - 'भई अब तो बैठा नहीं जा रहा है। सात बजे से बैठे-बैठे नौ बज गए - थकावट होने लगी है।'

'आप ठीक कह रही हैं - एक ही जगह पर कहाँ तक कोई बैठा रह सकता है। नेहा जी चलेंगी? ज़रा उठ कर कमर सीधी कर लें।'

'कहाँ जाएँगी? भी देखिए। लोग तो अभी तक चले आ रहे हैं ----'

'सुज़ाता भी नहीं दिखाई प रही है।'

'उसकी बहू कहाँ है ----'

'क्या नाम है बहू का?'

'शायद चन्दना----'

'हाँ, हाँ चन्दना, अच्छी ल की है---सुज़ाता इस मामले में लकी है।'

'और नहीं तो क्या। इनके यहाँ तो सब उल्टा ही है---सास वर्किंग-वूमन और बहू हाउस-वाइफ।'

'सुजाता तो भई जाने कब से काम कर रही है। अब तो रिटायरमेण्ट का टाइम हो गया है। शायद एक-आध साल और है ----'

'शी इज़ वेरी एफीशिएन्ट ---- ब ी पॉपुलर है अपनी ब्रान्च में।'

'अरे भाई उठिए मिसेज कपूर---देखें तो खाने-वाने को मिलता भी है या नहीं।' इस बार नेहा ही उठकर ख ी हो गई। मन ही मह सोचा, अच्छा बुलाकर बैठा दिया। सारे सीरियल मारे गए।

सब कोई उठीं। कुछ को उठने में काफी तकलीफ हुई। मिसेज कपूर को तो सहारे की जरूरत प ी।

तभी भी चीरती हँसती-मुस्कुराती सुजाता सामने से आती दिखाई दी। गोल्डन यलो साउथ-सिल्क रेड बार्डर और गले में सोने की लम्बी चेन----अच्छी लग रही थी। बहुत अच्छी लग रही थी। दोनों हाथ फैलाकर सबसे मिल रही थी। बार-बार कह रही थी सॉरी-सॉरी, आइ एम सो सॉरी। माफ कीजिएगा मिसेज कपूर, नेहा हाऊ आर यू? विपाशा कितनी देर से बैठी हो---क्या करूँ लास्ट मिनट पर आफिस में एक ऐसा काम आ गया कि उठ ही न सकी। खरे साहब तो बार-बार फोन कर रहे थे

'कोई बात नहीं, हम तो ब े आराम से एन्जॉय कर रहे हैं।'

'सुजाता सब कह रहे हैं इट इज़ योर बर्थ-डे, इज़ इट राइट?'

'ओ नो ! मेरा बर्थ-डे ! हाऊ सिली। नहीं भाई। समथिंग एल्स----अभी-अभी मेरा बेटा एनाउन्स करनेवाला है।'

'क्या बात है भई?'

'अभी पता चला जाता है---आईए, आईए---डिनर सर्व होने जा रहा है, उधर चलिए' सुजाता सबको आमंत्रित करती है।

सुजाता की पर्सनैलिटी ही ऐसी है कि सब कोई आकर्षित हो जाते हैं। इस उम्र में भव्य-सी लगती है। छरहरे बदन की एक कर्मठ, यूँ कहो रिस्पांस्बिल महिला।

पीछे चलते-चलते दिव्या बोली, 'मैं तो कहूँगी कि मिस्टर खरे इज़ ए लकी मैन। ऐसी वाइफ़ ----घर-बाहर सँभाल रखा है। बच्चे भी ब े ही वेल-विहेव्ड हैं।'

'दे एडोर देअर मदर।'

सभी एक जगह इकट्ठा हो रहे थे। जेन्ट्स के हाथों में अभी भी ड्रिंक्स् थे---पर सबके नहीं। यंगर जेनेरेशन गप्पे हाँकने में लगा था।

लवली की भी फ्रेंड्स आई थीं। एक ऊँची जगह पर ख े होकर सुजाता के पुत्र केतन ने मुस्कुरा कर दोनों हाथ उठाए।

'प्लीज़,प्लीज़---लिसिन मी---मुझे यह एनाउन्स करते गर्व हो रहा है, (लोग साँस रोके ख े थे। अचानक पिन-ड्राप सन्नाटा हो गया) आय एम एंड अवर फैमिली इज़ सो हैप्पी---दैट पापा ने ये होटल स्वराज खरीद लिया है। वाऊ----ही इज़--वी--दि ओनर ऑफ दिस होटल स्वराज----प्लीज़ गिव हिम ए बिग हैण्ड----।' तालियों की ग ग ाहट से सारा माहौल गूँज उठा। बधाई देने की धूम मच गई। सभी कोई लोगों से घिरे मिस्टर खरे से हाथ मिलाने के लिए आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे थे।

पूरा परिवार ही बधाई देने वालों से घिर गया। कोई दिल से, कोई बेदिली से----कोई ईर्ष्या से, कोई अविश्वास से----बधाई तो दे ही रहा था। सभी ऊपर से दिखा देना चाहते थे कि वी आर सो हैप्पी----हम दिल से बधाई दे रहे हैं।

तभी माइक पर डिनर लग जाने की घोष्णा से भी में चंचलता नज़र आई। लोग उधर चल दिए जिधर डिनर लगा था। होटल के पीछे बहुत ब े लॉन में खाने से सजी मेजें देख कर लोगों के कदम उधर ही बढ़ चले।

प्रस्तुति ने ऋचा से कहा - 'जरा जल्दी चलो वरना प्लेट मिलने में घंटा भर लग जाएगा'

'हाँ, चलो उस पार्टी से आगे बढ़ जाते हैं।'

'मुझे तो ये ही नहीं नज़र आ रहे हैं। मैं खा भी लूँगी तो इनकी राह देखनी प ेगी।'

'अगर इन्होंने न खाया तो मैं खा कर ही खिसक लूँगी। बच्चों को प ोस में छो कर आई हूँ।'

'कैसे जाओगी? चाभी तो सक्सेना साहब के पास होगी।'

'नहीं, कार की चाभी मेरे पर्स में है।'

प्लेटें उठाने वालों की तो वहाँ पहले से ही भी लगी थी। वहीं सलाद रखा था तो लोग आगे बढ़ ही नहीं रहे थे।

फिर आज की इस अनइमैज़िनरी घटना ने तो यूँ भी लोगों को डिस्कशन का टॉपिक दे दिया था। लोग ब` उत्तेजित थे। कुछ अपनी निकटता साबित करने के लिए कह रहे थे कि उन्हें पता था खरे होटल वालों से नेगोसिएशन कर रहा है।

प्लेटें भरने के बाद कुछ महिलाएँ कुर्सियों पर जा बैठीं।

'तब से ऐसा सस्पेंस क्रिएट किये हुए थी कि क्या कहें।'

'कौन?'

'यही सुजाता----'

'उसने तो बताया कि ऑफिस में जरूरी काम था।'

'हुँ---काम-वाम कुछ नहीं रहा होगा---इन्तज़ारी कराना ब` आदमियों की एक अदा होती है।'

'खूब पैसा लगा होगा।'

'अरे भाई, बेटे का ब्लैक-मनी जाएगा कहाँ?'

'चुप, बहू आ रही है----'

'खाना लाजवाब बना है----अरे बहू----'

'आंटी, आप लोगों ने सब कुछ लिया है न? खाना ठीक है न?'

'बहुत बढ़िया----'

'कितने सारे आइटम्स बनवा डाले हैं----बाप रे----'

'ये बताओ----खाना यहीं के रसोइये ने बनाया है?'

'जी आंटी, स्टाफ तो वही पुराना है।'

x x x x x x x x

कार तेजी से चली जा रही थी। चन्द्रा ने कार पर बैठते ही कह दिया था---'देखो तेज चलाना। रात के पौने बारह हो रहे हैं--बच्चे सो गए होंगे, दरवाज़ा खुलवाना मुश्किल हो जाएगा--।'

उधर नेहा रास्ते में पति से कह रही थी---'हुँह, चार घंटे बैठाए रखने के बाद बताया गया कि होटल खरीदा है---खोदा पहा निकली चुहिया---'पति महोदय ने नेहा की ओर एक बार देखा फिर सामने देखते हुए बोले,'तुम तो ऐसे कह रही हो जैसे होटल खरीदना तुम्हारे बाएँ हाथ का खेल है--'

'बेटे के ब्लैकमनी से खरीदा होगा।'

'अच्छा, हू टोल्ड यू?'

'सभी कानाफूसी कर रहे थे।' नेहा ने मुँह बिचकाया।

'नहीं बैंक से लोन लिया है।'

'उसमें भी कौनसी मुश्किल है। बीबी उतनी ब ी कंपनी की मैनेजिंग डायरेक्टर है----मुँह खोलने भर की देर है----।'

'भई तुम औरतों का ब ा नैरो माइंड होता है----मैं तुमसे बहस नहीं करने वाला हूँ----।'

'तो जल्दी चलो। प ोसी के घर बच्चे छो आए हैं, गालियाँ दे रहे होंगे।'

'चल तो रहे हैं, उ कर तो नहीं जा सकते हैं न।'

नेहा चुप हो गई। उसे गुस्सा आ रहा था अपने-आप पर---क्यों चली गई पार्टी में---क्या मिला?

दुमंजिला फ्लैट। नीचे चौकीदार मिला। उन्हें देखकर बोला, 'साहब, बाबा और बेबी नीचू में मेरे बेड पर सो गया है। आप चलो, मैं पहुँचाता हूँ।' नेहा ने आग्नेय दृष्टि से पति को देखकर कहा, 'सुना? एक दिन दो घंटे बच्चे न रख सके और हम थे कि १५ दिनों तक इनकी माँ के पैर टूटने पर अस्पताल में नाइट-ड्यूटी बजाते रहे। मतलबी----'

'आदमी से किसी बात की उम्मीद नहीं करनी चाहिए नेहा। खैर, चलो तुम ताला खोलो मैं एक को उठाकर लाता हूँ। बहादुर तुम बाबा को उठा लो।'

'जी साब।'

तीनों चुपचाप सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

परिणीता

प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र

"----जीवन में इतने क्षण तुम्हारे साथ बिताने पर भी अगर अभी हृदय में कुछ संदेह शेष है, तो मैं असमर्थ हूँ। मैंने सदैव अपनी भावनाओं का केन्द्र केवल एक ही माना है, और वह हो 'तुम'। तुमसे तिरस्कृत होने पर जीवन में अब शेष ही क्या है?

यह लो अपनी अमानत,

तुम्हारी छाया।"

राजेन्द्र ने पत्र पढ़ा----एक बार, दो बार, कई बार। पथरायी आँखों से उसने उस नवजात बालिका पर भी दृष्टि डाली। निद्रित आँखें अधखुली अवस्था में भावी स्वप्नों का निर्माण कर रही थीं। वह सोचने लगा, 'मेरे जीवन की सार्थकता छाया के बिना क्या है? यह विशाल भवन, यह सुख और आनंद की सामग्री, ये नौकर-चाकर, ये सब किसके लिए? आज से तीन वर्ष पूर्व यही छाया तो एक स्मित-यौवना नववधू की भाँति मेरे जीवन में आयी थी। और आज----'

टन----घ ी ने १२.३० बजाए। रेडियो गा उठा-----

'मेरे बिछु े हुए साथी तेरी याद सताए

बार बार तेरी सुध आये विरहा अगन जलाए। मेरे----'

झुँझलाकर राजेन्द्र ने उसे बंद कर दिया। एक क्षण को उसकी आँखें भर आईं। वह चुपचाप आँखें बंद कर सोफे पर लेट गया। मस्तिष्क गतिशून्य हो गया था।

छाया ब ी स्वाभिमानिनी रमणी थी। माँ-बाप के ला -प्यार में उसने दुख की छाया भी न देखी थी। अभी तीन साल की तो बात है। वह तितली की भाँति इधर से उधर फुर्र से उ जाती। एक बार हँसती तो मानों सारा घर हँसी से भर जाता। जब किसी को कष्ट में देखती तो आँसुओं का तार न टूटता। ऐसी कोमल भावनाओं में पली छाया एक दिन ब े घर की बहू बन कर चली गयी। बहू कहो या स्वामिनी, एक ही बात थी। ससुराल में पति को छो अन्य कोई न था।

एक वर्ष बाद जब वह मायके लौटी तो उसके सौन्दर्य में चार-चाँद लग गए थे। स्वाभाविक सौन्दर्य के साथ सुख और सौन्दर्य के प्रसाधनों ने उसके रूप को और भी चमका दिया था। किंतु लज्जा, शील और सौन्दर्य का इस वृद्धि में सबसे अधिक हाथ प्रियतम के उस अपार स्नेह का था जो प्रत्येक भारतीय नारी के लिए एक गर्व की वस्तु होती है। पुत्री को प्रसन्न देख कर माता-पिता के चेहरों से भी आत्म-संतोष झलकता था।

दो वर्ष बाद इस बार जब वह लौटी तो माँ-बाप की आँखों में आँसू आ गये। उसकी स्वाभाविक हँसी ओठों पर न थी। वह हँसी तो, पर एक फीकी हँसी - जो मानो स्वयं उसी को धोखा दे रही हो।

चार मास हुए छाया एक कन्या की माँ बन चुकी है। वेदना और गंभीरता ने उसके नेत्रों के आँसुओं को सुखा दिया है। उसे पूर्ण विश्वास था कि संतान का प्रेम राजेन्द्र को अवश्य ही खींच लाएगा। भला कौन पिता होगा जिसे अपनी संतान देखने की प्रबल उत्कंठा न हो। पर राजेन्द्र न आया। जिस व्यक्ति में अपनी कन्या के प्रति अनुराग न हो, उससे भला और क्या आशा की जा सकती है !

उद्विग्नता और भी बढ़ गई। वह बहुत कम बोलती और हँसी तो कल्पना मात्र थी। नारी सुलभ लज्जा ने उसका मुख बंद कर रक्खा था। पिता के घर का सब सुख भी उसके लिए असह्य था। उसने राजेन्द्र से रुष्टता और उदासीनता का कारण पूछा। साथ ही अनवगत अपराधों के लिए क्षमा माँगी। एक सप्ताह बाद उत्तर मिला ---- 'मैंने जो कुछ किया है, बहुत सोच-विचार कर। मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे घर के वातावरण में तुम्हारा निर्वाह नहीं हो सकता। मैं पुरुष हूँ। मेरा पुरुषत्व प्रेम तो स्वीकार कर सकता है, दासता नहीं। तुम्हें एक अनुग्रहीत, आज्ञाकारी अनुचर चाहिए। दुःख है, मुझमें इतनी क्षमता नहीं है।

रही मुन्नी। उसकी चिन्ता न करो। उसका पिता मोहताज नहीं। वह सब कर लेगा। -------राजेन्द्र'

'छाया आज यह असाधारण मुस्कान कैसी? कौन-सी निधि तुम्हें मिल गयी है?'
छाया बच्ची के लिए स्वैटर बुनने में मग्न थी और विधि की वामता पर हँस भी रही थी। सिर उठाकर देखा और बोली - 'आओ शारदा, कहाँ रहीं तुम इतने दिन? कहाँ तो रोज का वायदा था और कहाँ अब आठ दिन बाद !

'हाँ बहन ! पिताजी कुछ अस्वस्थ थे। अवकाश न मिला। आज जल्दी कार्य समाप्त कर आ गई हूँ। फिर न जाने तुम कब मिलो।'

'क्यों?'

'मैं अब जा रही हूँ छाया। वे जो आये हैं।'

'अच्छा----'कहकर विस्फारित नेत्रों से शून्यावकाश की ओर देखती रह गई।

शारदा ने टोका, 'क्या सोचने लगीं? क्या जीजाजी की याद आ गई?'

छाया हँस दी - एक ऐसी जो रोगी के अंतिम क्षणों में उसके मुख पर खेल जाती है। बोली, 'कुछ नहीं, यही सोचती थी कि अब न जाने कब तुम लोगों से मिल सकूँ।'

'क्यों बहन, क्या तुम भी जा रही हो? जीजाजी कब आ रहे हैं?'

'देखो - पर हाँ जाऊँगी अवश्य।'

'तो मैं भी उनके साथ देहली आऊँगी। मिलोगी न बहन !'

'क्यों नहीं।'

'अच्छा नमस्ते।'

छाया ने हाथ जो नमस्ते किया और फिर स्वैटर बुनने लगी।

x x x x x

दरवाज़े के सामने राजेन्द्र ने कार रोकी ही थी कि नौकर हाँफता हुआ आया।

राजेन्द्र ने पूछा, 'क्या है?'

'बाबूजी, बाई आयी थीं।'

'कहाँ है?' हर्ष और विस्मय से वह भर गया।

नौकर चुप था। राजेन्द्र कुछ शंकित-सा हुआ। जोर से बोला, 'बोलता क्यों नहीं? कहाँ हैं बाई?'
वह काँपता हुआ बोला, 'वह चली भी गयीं, सरकार !'
राजेन्द्र का क्रोध दूना हो गया। आँखें निकाल कर बोला, 'तू क्या कर रहा था? कहाँ चली गयीं?'

'मैं रसोईघर में था मालिक ! थो ी देर बाद किसी बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई प ी। ऐसा लगा जैसे आपके कमरे से आ रही हो। मैं ज्योंही कमरे में घुसा मैंने दूसरे दरवाज़े से किसी को बाहर निकलते देखा।'

'फिर?'

'मैं चक्कर में प गया। बच्ची बुरी तरह रो रही थी। उसे उठाकर मैं उसी क्षण बाहर आया। देखा तो बाई एक ताँगे पर बैठकर जा रही थीं। मैंने आवाज़ दी और बच्ची को लेकर उनकी ओर दौ ा। पर ताँगा चल दिया। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उन्होंने हाथ के इशारे से लौट जाने के लिए कहा और फिर ताँगा बहुत तेज़ हो गया।'

राजेन्द्र के पैरों के नीचे से ज़मीन निकल गयी। वह ज्ञान-शून्य-सा हो गया। फिर दूसरे ही क्षण वह अंदर आया। बच्ची पालने में सो रही थी। पास ही एक लिफाफा प ा था। उसने काँपते हाथों उसे खोला। लिखा था -

'जीवन में इतने क्षण तुम्हारे साथ बिताने पर भी--------

है यह अरमान

अनिल मेहता

हरदम चेहरे पे मुस्कान
बस मेरी इतनी पहचान।
दुनियादारी से अनजान
लोग समझते हैं नादान।
चाहूँ न मैं मान-सम्मान
होठों पे हो बस हरीगान।
हूँ तो छोटा-सा इंसान
अंश उसी का जो है महान।
छू लूँ आपको भर के उ ान
बस मन में है ये अरमान।

ख ीबोली हिन्दी के बीज कवि : अमीर खुसरो

डा. वीरेन्द्र कुमार वसु

हिन्दी साहित्य के विकास-क्रम में आदि काल के आरम्भिक काल से ही महान् प्रतिभाओं की श्रृँखला बनती है। इस दीर्घ परम्परा में एक से बढ़कर एक संत, महात्मा, धर्म-संस्थापक एवं सामान्य जन-जीवन के व्याख्याताओं की अवतारणा हुई है। दार्शनिक संत कवियों ने तो तत्कालीन विश्रृंखल सामाजिक जीवन को नई-नई दिशाएँ प्रदान कीं। इसी जमात में अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा के धनी ख ीबोली (हिन्दी) के बीज कवि अमीर खुसरो का भी प्रादुर्भाव हुआ है, जिन्होंने अपनी वाणी के विलक्षण शब्द-संयोजन से हिन्दी के द्वार खोल दिये।

अमीर खुसरो की अवतारणा सन् १२७५ई. में ज्ञात है। १९७५ई. में उनकी सप्तशती समारोह के आयोजन भी हुए थे। वैसे तो उनके जन्म स्थान को लेकर मत-मतान्तर बने रहे तथापि उनका जन्म-स्थल सर्वसम्मत दिल्ली ही है। खुसरो देहलवी कहकर उन्हें सम्बोधित करने वालों में फारसी के मशहूर शायर शेख सादी और अब्बास इकबाल के नाम तो सबकी जुबान पर हैं हीं, सच्चाई तो यह है कि अमीर खुसरो मूलतः एक उदार सूफी संत रहे। वे सांस्कृतिक एकता के अग्रदूत, भारतीय गीत-संगीत के कद्रदान और अपनी मातृभूमि के प्रति असीम प्रेम रखने वाले एक सच्चे इंसान रहे।

अमीर खुसरो के बारे में मौलाना अब्दुल कलाम की ये बातें कितनी माकूल हैं कि भारत ने सात सौ वर्ष की अवधि में अमीर खुसरो जैसे प्रभिावान् एवं अप्रतिम किसी दूसरे विद्वान को जन्म नहीं दिया। अमीर खुसरो की सबसे ब ी विशेषता यह रही कि उन्होंने फारसी और हिन्दी-मिश्रित एक ऐसी जुबान को उभारा कि दोनों के समन्वय से ख ीबोली (हिन्दी) की अपार सम्भावनाएँ परिलक्षित हो गईं। अपने बन्दिशों में उन्होंने भारत की भाषा के प्रति जो आस्था व्यक्त की है, वह सबके लिए अनुकरणीय है।

अमीर खुसरो के गुरु हजरत निजामुद्दीन औलिया थे। हर साल उनकी मज़ार पर उर्स होता है, जिसमें औलिया साहब के प्रति सभी पूरी श्रद्धा और भक्ति से अपना सिर झुकाते हैं। खुसरो तो आठ वर्ष की उम्र में ही हजरत निजामुद्दीन के शागिर्द हो गये थे। गुरु-शिष्य के पारस्परिक संबंध पर सूफी संत कवि रूमी का यह शेर काबिलेगौर है -

'मौलवी हरगिज न शुद मुल्लाये रूम।
ता मुलामे शम्स तबरेजी न शुद।।'

मतलब यह कि 'मैं वास्तव में विद्वान तब हुआ, जब मैं शम्स तरबेज का दास बना। अमीर खुसरो की दीक्षाप्राप्ति की भी अजीब दास्तान है। कहते हैं, जब उनके पिता उनको लेकर हजरत निजामुद्दीन के पास पहुँचे तो खुसरो ने अपने पिता को अंदर भेज दिया और खुद दरवाज़े के बाहर बैठ गये। मन में उन्होंने सोचा कि यदि सही मायने में वे संत होंगे तो उसने जो सोचा है, उसका उत्तर वे भिजवा देंगे। यह सोच ही रहे थे कि संत का एक सेवक आया और खुसरो से कहा, 'हे सत्य के खोजी ! भीतर जाओ, ताकि कुछ समय तक हमारे रहस्यभागी बन सको।' खुसरो ने जैसे ही यह सुना, आत्मविभोर हो उठे। गुरु और शिष्य का तादात्म्यभाव जाग्रत हो उठा। खुसरो के प्रति गुरु भावाभिभूत हो उठे। उन्होंने अपनी ख्वाहिश इन लफ्ज़ों में बयान की - 'खुसरो को मेरी बगल में ही दफ़न कर दिया जाय।' खुसरो जब दिल्ली में थे तो अचानक गुरु की मौत की खबर उन्हें मिली। खुसरो फौरन दिल्ली से लौटकर गये और अपने गुरु की लाश को देखकर गीली आँखों से यह दोहा गाया -

'गोरी सोवत सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपनो, रैन भई यह देस।।'

यह कहते हुए खुसरो बेहोश हो गये। बाद में तत्क्षण अपने प्राण भी त्याग दिये। ऐसे रमे थे खुसरो।

हिन्दी भाषा के इतिहास में ख ीबोली के प्रथम प्रवर्तक के रूप में खुसरो सदैव अंकित रहे हैं। उनकी उपलब्ध रचनाओं में पहेलियाँ, मुकरियाँ, निस्बतें, दोसखुन, ढ़कोसले, गीत, कव्वाली, फारसी-मिश्रित हिन्दी-छन्द, सूफी दोहे, ग़ज़ल, फुटकर छन्द, खालिकबारी वगैरह प्रसिद्ध हैं।

पहेलियों में खुसरो माहिर रहे। सोत्तर पहेलियाँ खुसरो की बहुत प्रसिद्ध रहीं। जैसे -

'श्याम बरन और दाँत उनके लचकत जैसे नारी।
दोनों हाथ से खुसरो सींचे और कहे तू आरी।।'

अंत में उत्तर समाहित है, यानी 'आरी'।

मुकरियों में तो खुसरो कमाल के हैं। मुकरियों में चार पंक्तियों के बन्ध हैं; यथा -

'रात दिन जाको हे गौन,
खुले द्वार वह आये मौन,
बाकी हर बतावै कौन,
ए सखी साजन, ना सखि पौन।'

खुसरो के दो सखुने ने भी काफी शोहरत बटोरी। 'सखून' (फारसी) यानी 'कथन'। पंक्तियों में दो-दो कथनों (सखुनों) का जवाब शामिल है; मसलन -

पण्डित क्यों न नहाया,
धोबिन क्यों मारी गई?'

दोनों सवालों का जवाब है - 'धोती न थी।'

गीतों में खुसरो ऐसे उतरे - 'अम्मा मेरे मामा को भेजो जी कि सावन आया।'

आध्यात्मिक अभिव्यंजनाओं के साथ भी खुसरो ने अपनी कलम चलाई। आत्मा-परमात्मा को माधुर्य भाव से संपृक्त कर खुसरो ने पुरुष और स्त्री के प्रेम-भाव को ऐसे व्यंजित किया है -

बहोत खेल खेली सखियन से,
अंत करी लरकाई।
न्हाय धोय के बस्तर पहिरे,
सब ही सिंगार बनाई।।
बिदा करन को कुटुम्ब सब आये,
सिगरे लोग लुगाई।
चार कहारन डोली उठाई,
संग पुरोहित नाई।।'

भाषा की दृष्टि से खुसरो के लेखन में ब्रजी और अवधी भाषा का प्रचुरता के साथ व्यवहृत होना उनकी विलक्षणता के संकेतक हैं। फारसी-मिश्रित हिन्दी को खुसरो ने खूब अपनाया। अनूठी बात तो यह है कि इन्होंने भारतीय आर्य-भाषा की प्रायः सभी ध्वनियों का प्रयोग किया। 'पुरुष' को 'पुरिख' लिखकर तथा 'मिला' को 'मिल्या' की तरह लिखा उन्होंने। चाहे जो हो, खुसरो आज भी ख ीबोली हिन्दी के सूत्रधार बन कर बीज-कवि के रूप में सर्वस्वीकृत हैं।

हिन्दी

मधुप मोहता

भाषा तुम माँ हो, शिशु हैं जिज्ञासाएँ,
तुम्हारे अस्तित्व बोध से, भूखी जिज्ञासाएँ दम तो ती रहेंगी।
ऊँची होती रहेंगी इमारतें, लम्बी होती जाएँगी परछाइयाँ,
एक दिन सूरज की ज ें काट देंगी।
सुतलियों में बँधी हिंदी की अनपढ़ी किताबें,
कार्यालय के किसी कोने में धूल खाती रहेंगी।
हम राजभाषा नीति की पोथियाँ छापते रहेंगे।
खोजते रहेंगे, उपयुक्त पदों के लिए उचित अधिकारी।
कुरसियाँ भरी होंगी, पर पद रिक्त रहेंगे,
एक दिन निरस्त हो जाएँगे।
हम जो प्रवीण हैं, अँग्रेजी प्रमाण-पत्रों से,
अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने में व्यस्त हो जाएँगे।
लोग शायद हम पर हँसेंगे,-----कि हम हिन्दी में हँसते हैं।

प्रेयसी पुराण

डा. कमल गुप्त

मेरे एक दोस्त को पिछले दिनों एक ऐतिहासिक नगर की खुदाई से ऐतिहासिक महत्व के बहुत से ऐतिहासिक सामान बरामद हुए। उन्हीं सामानों में से बहुत ही पुराने, फटे, बेहाल और मु`-तु` हाल में एक वृहदाकार ग्रन्थ निकला। उसका पहला फ़लक पलटते ही वह बीच से नायिका की 'कटि छीन' और नाज़ुक कमर की तरह दो टूक हो गया। मेरे दोस्त ने उस ग्रन्थ का नाम जानना चाहा। उस पर पुरानी लिपि में लिखा हुआ था - प्रेयसी पुराण। दोस्त चमत्कृत हो उठा। उसके हाथों एक नये पुराण की खोज हुई थी और वह भी अद्भुत रूप से महत्वपूर्ण विषय पर लिखा हुआ। अद्भुत इसलिए कि इस देश में पुराने जमाने में जो कुछ भी लिखा गया, वह धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य ही लिखा गया। दूसरे शब्दों में कहना हो तो कहा जाएगा कि प्रेयसी विरोधी साहित्य लिखा गया। उपनिषदों से लेकर जैनों और बौद्धों सभी को एक तरह से आप प्रेयसी-विरोधी साहित्य कह सकते हैं। उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ निकट बैठना जरूर है, पर यह निकट बैठना प्रेयसी के निकट नहीं, बल्कि गुरु के निकट बैठना था। अब ज़रा सोचें गुरु और प्रेयसी का भी कोई मेल है, कोई तुक है? प्रेयसी के निकट बैठने का जो आनंद है, वह परमानन्द से कम नहीं है, लेकिन बौद्धों ने संघम् शरणम् गच्छामि कह कर उस परमानंद की कमर तो दी, जबकि दुनिया के बहुत से लेखकों ने प्रेयसी शरणम् गच्छामि प्रकरण लिख-लिखकर दर्जनों कलमें तो दी हैं। उमर खैय्याम ने अपनी प्रेयसी से मुखातिब होकर एक बार कहा था कि मेरी सबसे ब ी ख्वाहिश यही है कि मेरे पास एक कविता की किताब हो, एक भरा हुआ जाम और मेरे पास बगल में बैठी हुई तुम गाती रहो। क्या बात कही है, खैय्याम ने भी ! ज़िन्दगी में गोया एक नयी ज़िन्दगी मुहैय्या कर दी। अरे जीना हो तो इस तरह से जिओ, जंगलों की खाक छान के क्या होगा ! खुदा ने कितनी खूबसूरत ज़िन्दगी बक्श दी और भाईयों ने उसे मिट्टी में मिला कर रख दिया। माटी की मूरतों की भी कोई ख्वाहिश हो सकती है। जो सिर्फ माटी की ही है, वह एक-न-एक दिन जरूर माटी में मिल जाएगी। नहीं मिलेगी तो जोगी-फकीर से लेकर हिन्दी के जायसी, कबीर सभी उसे पीट-पीटकर माटी में मिला डालेंगे। मेरी समझ में नहीं आता कि आखिर यह पूरी सूफी-संतों की पलटन भगवान द्वारा रच-रचकर बनाई गयी इस खूबसूरत काया को दो कौ ी की क्यों बनाने पर उतारू हो गई थी। अरे कुछ कहना ही था इसे लेकर तो उमर खैय्याम की तर्ज़ में कहा होता। प्रसाद की तर्ज़ में कहा होता और 'लव एट फर्स्ट साइट' की कीमत का अंदाज़ लगाया होता। 'मधु राका मुसक्याती थी पहले देखा जब तुमको' से लेकर 'शशिमुख पर घुँघट डाले----कौतुहल से तुम आये' की स्थिति कई मायनों में उमर खैय्याम से भी आगे निकल जाती है। अँग्रेजी भाषा का कवि कीट्स भी उसी की तरह खूबसूरती पर जान निछावर करने वाला अगर न होता तो यह लिखने के बदले कि ट्रूथ ब्यूटी, ब्यूटी ट्रूथ, वह लिखा होता - फाल्स ब्यूटी, ब्यूटी फाल्स। यानी कि सौन्दर्य मिथ्या है और मिथ्या सौन्दर्य। हिन्दी के हिसाब से तुर्ज़ुमा होगा - विषरस भरा कनक घट जैसा, पर कीट्स ने ऐसा नहीं सोचा। दुनिया का कोई भी भला आदमी खूबसूरती को गाली नहीं देगा। कीट्स ने एक और जगह पर खूबसूरती की निस्बत कहा है - 'ए थिंग ऑफ ब्यूटी इज़ ए ज्वाय फॉर एवर'। और यह तय है कि प्रेयसी से बढ़ कर सारे जहान में खूबसूरत कही जाने वाली चीज़ दूसरी नहीं हो सकती। सीधा मतलब बकौल कीट्स के यह हुआ कि प्रेयसी यदि खूबसूरत है तो आनन्द भी परमानंद का रूप ले लेगा।

प्रेयसी पुराण के कुछ पृष्ठों को उलटते-पलटते समय, वे चोट खाये हुए नाज़ुक दिलों की तरह टूट-टूट जाते हैं। दोस्त बहुत सँभालकर पन्ने-दर-पन्ने पलटता जाता है और यह जानकर हैरत में प जाता है कि प्रेयसी पुराण का लेखक अज्ञात है। लेखक ने अपना नाम उद्घाटित करना मुनासिब क्यों नहीं समझा और उसे अज्ञेय और अज्ञात रखा। इसका कोई खास मतलब खुल नहीं सका। वह सोचने लगा - चूँकि प्रेयसी प्रकरण हर जमाने में हर ज़िन्दगी में एक अज्ञात और अज्ञेय प्रकरण की तरह रहा है, इसलिए प्रेयसी पुराण का लेखक भी अज्ञात हो गया। बहरहाल अठारह पुराणों के बाद इस उन्नीसवें प्रेयसी पुराण की प्राप्ति के द्वारा मेरा दोस्त एक ऐतिहासिक चमत्कार पैदा करना चाहता था पर लेखक

का नाम अज्ञात होने से एक समस्या पैदा हो गयी थी। मेरा दोस्त मुझे इतिहास का अच्छा-खासा चमत्कार मानता है। इसलिए उसने अपना प्राब्लम मेरे सामने रखा। मैंने इतिहासकाराना अन्दाज़ में कहा - किताब से लेखक और प्रिण्ट लाइन के गायब होने का सीधा मतलब है कि यह किताब जिस ज़माने में लिखी गयी थी, सेंसर की चपेट में आ गयी होगी।

- सेंसर और उस ज़माने में? कैसी बात करते हो? अरे ये तो आधुनिक सरफिरों का काम है कि प्रेम, प्रणय और प्रेयसी के प्रकरणों पर सेंसर का प्रहार-दर-प्रहार कर रहे हैं, मार-मार कर भुरता बना दिया है। पुराने ज़माने में ऐसी किताबें जब्त नहीं होती थीं।

- बात तुम समझे नहीं। दरअसल उस ज़माने के आदमी में सेंसर उसकी आत्मा के भीतर आटोमैटिक ढ़ंग से फिट होता था। मैंने कहा।

- और आजकल? उसने सवाल फेंका।

- आजकल वह बाहर से फिट होता है। सेंसर कभी सरकार फिट करती है, कभी हवलदार फिट करता है, तो कभी थानेदार फिट करता है। पहले ज़माने में सेंसर की मशीन भगवान के जरिये अन्तरात्मा में फिट कर दी जाती थी, पर अब वह शैतान के जरिये जूते में नाल की तरह आदमजात के साथ बाहर से फिट कर दी जाती है। आदमी को नालदार घो ` की तरह सही रास्ते पर चलाने के लिए यह जरूरी समझा गया। पर अन्ज़ाम उल्टा ही हुआ। कीलें ठुकती रहीं पर नाल और चाल वही रफ़्तार बेढ़ंगी की तर्ज़ में ही बरकरार रही। अब तो हाल यह है कि उस सरकार का ओवरहॉल होते देर नहीं लगती जो जनता-जनार्दन पर सेंसर लगाती है। सेंसर लगा और सरकार का सर कलम हुआ। कुछ लोगों का यह ख्याल है कि अखबारबाजी पर लगे सेंसर से ज्यादा खतरनाक असर इश्कबाजी पर लगे सेंसर का होता है। जस्टिस खोसल कमेटी ने भी फिल्मी पर्दे पर चुम्बन-क्रिया पर सेंसर लगा दिया जिसका अंजाम यह हुआ कि दोराहों, चौराहों और छराहों पर यह दिव्य-क्रिया और जोर-जोर से प्रकट होने लगी है। जो बात रोकोगे और जोर से फैलेगी, जिस बाँध में पानी की निकासी का इन्तज़ाम बतौर सेफ्टी-वाल्व के होता है, वह बाँध नहीं टूटता। सेंसर लगाओ पर सेफ्टी-वाल्व का इन्तज़ाम भी रखो।

- पुराने ज़माने में यदि सेंसर था तो क्या सेफ्टी वाल्व भी था?

- जरूर था।

- किस रूप मे? दोस्त बोला।

- ये तमाम खजुराहो जैसे मंदिरों की काम-क्री ारत मूर्तियाँ, वात्स्यायन के संस्कृत साहित्य में सौन्दर्यशास्त्र ग्रन्थ और हिन्दी में जोरदार रीतिकालीन साहित्य उस ज़मानें के आदमियों के लिए सेफ्टी-वाल्व का ही काम करते थे। इसीलिए आदमी में आज की तरह की लफंगीरी नहीं थी, शोहदेबाजी नहीं थी। हर आदमी प्रेम के सागर में प्रेयसीनुमा नौका के साथ नौका-विहार का आनन्द लेता हुआ परमानन्द को प्राप्त करता था।

- हो सकता है यह प्रेयसी पुराण भी एक ऐसा ही सेफ्टी-वाल्व रहा हो।

- नहीं, ऐसी बात गलत है। अगर यह सेफ्टी-वाल्व होता तो इस पर से लेखक का नाम गायब न होता। यह निश्चित ही सेन्सर्ड किताब रही होगी और सरकार द्वारा जब्त कर ली गयी होगी। यह प्रति किसी मनचले आदमी ने लेखक के नाम समेत ऊपरी कवर को फा कर, छिपाकर रख ली होगी।

- पर सरकार को आखिर इस प्रेयसी पुराण के पीछे प ने की क्या जरूरत थी?

- देखो, बात दरअसल यह है कि हमारे देश में पहले राजशासन से ज्यादा धर्मशासन था। ज़िन्दगी का हर रस्मोरिवाज धर्म के नाम पर चलता था और प्रेयसियाँ ऐसे हर रास्ते में रो ा बन जाती थीं। आदमी भगवान को पाने के लिए तपस्या कर रहा हो, एक अदद प्रेयसी ने 'विश्वामित्र' की तरह उसका बे ा गर्क कर दिया। कोई राजा धर्मराज भले ही हो पर शांतनु की तर्ज़ में मत्स्यगंधा जैसी कोई बाला उसके लिए बला बन कर आ जाएगी और एक हंगामा ख ा करके भीष्म जैसे भले आदमी के लिए सर-दर्द पैदा कर देगी। साहित्यकार के लिए केशवदास की तरह का 'बाबा कहि-कहि जाईं' वाला दिल का दर्द उभार जायेंगी और हाथ मलने को छो जायेंगी। एक ऐसी ही बाला ने नारद को भी हाथ मलने की स्थिति तक पहुँचा दिया था। कहने का मतलब यह है कि ये प्रेयसियाँ रूपी बालाएँ या बालाएँ रूपी प्रेयसियाँ, जो भी फकीर, ऋषि-मुनि, राजा-रंक थे, सबके लिए बेशुमार बलाओं का रेडीमेड सामान थीं। इस प्रेयसी-पुराण की विषय-सूची को उलटने-पलटने से यह बात साफ-साफ नज़र

आ रही है कि इससे समाज में मुहब्बतबाजी का दौर आया होगा। लोग शादी के बाद भी इश्क़बाजी से पीी त हुये होंगे। कैकेयी जैसी प्रेयसीनुमा बीबियों का जोर चला होगा और अनेक रामों को बनवास की लम्बी सजाएँ काटनी प ी होंगी। अनेक बिहारियों को अपने रहनुमाओं के लिए लिखना प ा होगा - अली कली ही सो बंध्यो, आगे कौन हवाल। इसमें कोई शक नहीं कि इन प्रेयसियों ने सलीम की तरह के बेटे को अपने अकबरनुमा बाप से मैदाने-जंग में भि ा दिया होगा, जेबुन्निसा जैसी प्रेयसियों के फिराक में औरंगजेबनुमा बापों के हाथों कई प्रेमियों को खौलते कुण्ड में बिना उफ् किये मरना प ा होगा। और----मतलब यह कि सारा-का-सारा हंगामे दौरा इसी प्रेयसी पुराण की बदौलत हुआ होगा जिससे घबरा कर इस पर सेन्सर लगा दिया गया होगा।

दोस्त बोला - भई मान गये। तुमने तो इस प्रेयसी पुराण के लेखक के नाम के गायब होने की ऐसी जोरदार ऐतिहासिक व्याख्या की है कि तबीयत खुश हो गयी।

- मैं हवाई बातें नहीं कर रहा हूँ। मैंने इस पर गहराई से सोचा है। जरा गौर करो, आखिर क्या बात है कि हमारे तमाम भारतीय समाजशास्त्रियों ने समाज में माँ, बहन, चाची, मामी, भाभी, मौसी, पुत्री, पत्नी वगैरह सबका उल्लेख किया, सबके कर्तव्य और अधिकार बताये-गिनाये, पर कहीं भी प्रेयसी के कर्त्तव्य और अधिकार तो दूर, उनका नाम तक नहीं लिया जबकि हाल और हालत यह है कि सारे रिश्तों के ऊपर प्रेयसी हमेशा भारी ही रहती रही है। मैं समझता हूँ कि प्रेयसी पुराण के लेखक ने इन सारी बातों का हवाला देते हुए उन समाजशास्त्रियों की खिंचाई कर दी होगी और परिणामस्वरूप यह पुराण 'बैन' कर दिया गया होगा। जरा इसकी विषय-सूची पर गौर फरमाओ तो तुम्हें पता चलेगा कि यह पुराण कितना सनसनीख़ेज और क्रान्तिकारी था। पहला अध्याय ही कितना जोरदार है - प्रेयसी, ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना। अन्य अध्यायों में - बिन प्रेयसी सब सूना, प्रेयसी - जीवन का प्राणतत्व, प्रेयसी ही ईश्वर है : ईश्वर ही प्रेयसी है, प्रेयसी - एक आध्यात्म-चिन्तन, प्रेयसी का रूपविन्यास और प्रकार, प्रेयसी के सामाजिक और धार्मिक अधिकार तथा कर्तव्य, प्रेयसी के उत्तराधिकार-संबंधी नियम, प्रेयसी की सामाजिक मान्यता, प्रेयसी के पुत्रों को समान अधिकार और उत्तराधिकार की समान सुविधाएँ, महत्वपूर्ण सिद्धी व प्रसिद्धी प्राप्त ऋषियों की प्रेयसियाँ, पतिभक्त पत्नियों के प्रेयसी-रूप, पत्नीभक्त पतियों की प्रेयसियाँ, भिक्षुणियों और सतियों के प्रेयसी-प्रसंग, संगीतज्ञों, साधकों, कलाकारों और कवियों की प्रेयसियाँ, सुधारकों और विचारकों की प्रेयसियाँ, सन्यासियों की प्रेयसियाँ, आचार्यों-प्राचार्यों और पुजारियों की प्रेयसियाँ, देवताओं के प्रेयसी-आख्यान, राजनयिकों-मंत्रियों व राजाओं के प्रेयसी-प्रकरण वगैरह-वगैरह। ब्रीफ में बस यही समझ लो कि इस प्रेयसी पुराण का सर्जक वास्तव में एक बहुत ब ा वैज्ञानिक विचारक और होनहार समाजवादी युगद्रष्टा रहा होगा। इसे उस जमाने का फ्रायड् कह सकते हो। विदेश में यदि यह पैदा हुआ होता तो फ्रायड् के बाप की तरह पूजा जाता, लेकिन इस धरम-करम और ऋषियों-मुनियों की तथाकथित तपोभूमि में, बेचारा यहाँ गुमनाम होकर रह गया तथा उसका यह महान् प्रेयसी पुराण भी गुमनाम हो गया।

- यार वाकई, इसका लेखक था ब ा तेज आदमी। इस प्रेयसी पुराण के जरिये तो उसने पुराने ज़माने के लोगों की पूरी बखिया ही उधे कर रख दी थी।

- नहीं यार, बखिया तो तब उध ती जब वह सेन्सर न हुई होती। इसी डर से तो उस ज़माने में भाई लोगों ने इसे 'किस्सा कुर्सी का' की तरह बैन करवा दिया होगा ताकि उनका भाण्डा न फूटने पाये।

दोस्त बोला - बिलकुल ठीक कह रहे हो। पर यार अब यह बताओ, इस नामी-गिरामी प्रेयसी पुराण के जरिये मैं किस तरह नाम कमाऊँ? कुछ ऐसा-वैसा नुस्खा बताओ कि रातों-रात शोहरत के सातवें आसमान पर पहुँच जाऊँ।

- ऐसा करने के लिए एक आधुनिक साहित्यकार वाला तिक म कर डालो। इसे थो े समय तक अपने पास और रखे रहो और मौका लगते ही चुपके से इस प्रेयसी पुराण को अपने नाम से छपा मारो। किसी को कानोंकान खबर भी नहीं होगी और तुम्हारा नाम सबकी ज़ुबान पर आ जायेगा।

- नुस्खा तो नाम कमाने का काफी जोरदार बताया, पर कहीं भाण्डा फूट गया तो?

- कहीं कुछ भाण्डा नहीं फूटेगा। इस शताब्दी के मजे ही ऐसे हैं कि कुछ भी करो, भाण्डा नहीं फूटेगा। फिर पहले की अपेक्षा वर्तमान युग में प्रेयसीवाद का कहीं ज्यादा जोर भी है। भई, इस शताब्दी को कोई कुछ भी कहे पर मैं तो एक शब्द में इसे प्रेयसी-शताब्दी ही कहूँगा। शायद इसीलिए

हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार ने जोरदार शब्दों में यह कहा भी है कि लेखक के लिए पत्नी के साथ-साथ एक प्रेयसी भी जरूरी है।

- यह प्रेयसी पुराण के लेखक की तरह जैनेन्द्र कुमार ने भी ब ी ऊँची बात कह दी है।

- हाँ, बात तो ऊँची है ही। उनकी इस घोषणा के परिणाम-स्वरूप साहित्य के साथ-साथ अनेक प्रेमियों और प्रेयसियों का भी कल्याण हुआ समझो। वैसे उनका पाक-साफ़ मतलब यही था कि साहित्य के पे के लिए प्रेयसी ब्राण्ड की खाद जरूरी है। पर मैं तो कहता हूँ, सिर्फ़ साहित्य ही क्यों, इस ब्राण्ड की खाद की बदौलत काफी हद तक चुनाव-नीति, दलबदलू-नीति, सरकार-बनाओ-नीति और सरकार-गिराओ-नीति भी कायम है। दुनिया में आये दिन इन प्रेयसियों की वजह से सरकारें मुँह के बल गिर रही हैं और मंत्री सर के बल। आज हर आदमी के दिल में ही नहीं फाइल और जेब में भी प्रेयसी विद्यमान है। आज कोर्ट से लेकर पोर्ट तक, लेन से लेकर प्लेन तक, घर-द्वार से लेकर बाजार तक, मंदिर से लेकर मस्जिद तक, गुरुद्वारों और दरबारों तक प्रेयसियाँ चाँद और सितारों की तरह बिछी हुईं, बिखरी हुईं और निखरी हुईं हैं। इसीलिए मैंने बीसवीं शताब्दी को प्रेयसी शताब्दी का नाम दिया है। अब इस मौके का तुम जम कर फायदा उठाओ और इस प्रेयसी पुराण पर वर्तमान सन्दर्भों का हवाला देते हुये तुम एक जोरदार महाभाष्य लिख मारो। विश्वास रखो तुम्हारा यह प्रेयसी पुराण मिस्टर एम.ओ.मथाई की किताब 'नेहरू काल की यादगारें' से ज्यादा बिकेगी। बस यही समझ लो, इस शताब्दी की यदि यह 'बेस्ट-सेलर' न हुई तो अपनी प्रेयसी को मैं मुँह न दिखाऊँ।

- सच कह रहे हो कि यह बेस्ट-सेलर हो जायेगी?

- बिलकुल सच कह रहा हूँ। यह बेस्ट-सेलर हो जायेगी तो तुम्हारे भी दिन 'इन डारिन में फूल' की तरह लौट आयेंगे। और तब तुम्हारी प्रेयसी भी अपने सेकेण्ड और थर्ड सभी प्रेमियों को छो कर तुम्हारे पास ताब तो लौट आयेगी और तुम्हारे पैसों के बल पर तुम पर तथा तुम्हारी इकलौती बीबी पर एकछत्र राज्य करेगी। भगवान तुम्हें ये दिन जल्दी दिखाएँ।

- मेरे लिए बद्दुआएँ दे रहे हो, मैं तुम्हारा सर तो दूँगा।

- मेरा सर क्यों तो ोगे। अरे तो ना ही है तो अपने रकीब का सर तो ो जिसने तुम्हारी प्रेयसी ही उ ा दी है। रही बात बद्दुआओं की तो मैं तुम्हें बद्दुआएँ क्यों दूँगा। अरे भले आदमी, मैं तो तुम्हें दुआएँ दे रहा हूँ कि तुम्हारे दिन फिरें और तुम्हारी बेवफ़ा प्रेयसी तुम्हारे दर पर तुम्हारी दौलत के गु में गु चिऊँटी की तरह लिपटी हुई आ जाये तथा तुम एम.ओ.मथाई की तरह नाम कमाओ, रूपया कमाओ, गाली कमाओ और नमकहराम कहलाओ।

- मैं नमकहराम हूँ? दोस्त गुस्से से उबल प ा।

- देखो नाराज़ मत होओ। प्रेयसियों का मामला ही नाज़ुक होता है। प्रेयसी चाहे दोस्त की हो या मालिक की या पुरखों की। उसमें टाँग अ ाओगे, उस पर कीच उछालोगे तो लोग तुम्हें नमकहराम तो कहेंगे ही।

- फिर तो इस प्रेयसी पुराण में कुछ करने से मैं तो बाज आया। अब बताओ इसका मैं करूँ तो क्या करूँ?

मैंने कहा - ठीक-ठीक बताऊँ? मेरी राय मानोगे?

- हाँ। बिलकुल।

- तो सुनो। मेरी राय में इस सनसनीख़ेज और भाण्डाफो मार्का प्रेयसी पुराण का मोह छो दो वर्ना इसके लेखक की तरह ही कहीं तुम भी सेन्सर्ड हो गये तो ज़िन्दगी जेल में चक्की पीसते बीतेगी। बेहतर होगा इसकी पूरी पाण्डुलिपि किसी विदेशी मालदार पुरातत्व विभाग को बेच दो और मालदार बन के गौरवान्वित होओ क्योंकि गौरवान्वित होने के लिए बेचने की क्रिया सर्वोच्च है - बेचना चाहे ईमान का हो, ऐसे पुरान का हो या प्रेयसी-प्रिया जान का हो।

'ए प्रिन्सेस रिमेम्बर्स' : महारानी गायत्री देवी

डा. रंजना हरीश

अनुवादिका डा. शशि अरोरा

कूच-बिहार की राजकुमारी और ब ौदा के गायकवा राजघराने की दोहित्री आएशा एक नए नाम से, एक नए स्वरूप में, जयपुर की प्रजा के सामने आ रही थीं। वे अब जयपुर के महाराजा सवाई मानसिंह की तृतीय पत्नी के रूप में जयपुर राजघराने में प्रविष्ट हो रही थीं। कहाँ कूच-बिहार और ब ौदा का मुक्त वातावरण और कहाँ जयपुर का परम्परावादी वातावरण, पर अब राजकुमारी आएशा, आएशा नहीं रही थीं। अब वो आएशा मिटकर महारानी गायत्रीदेवी बन गई थी और नाम बदलते ही जैसे उसकी दुनिया भी बदल गई थी। विदेश में शिक्षित, स्वतंत्र रहकर जीनेवाली, बॉय्कट बालवाली आएशा के लिए इस प्रकार का जीवन मुश्किल था। परम्परावादी प्रजा का मन रखने के लिए प्रारंभ में गायत्री देवी ने सार्वजनिक जीवन टाला था, पर्दा-प्रथा का निर्वाह भी प्रसंगोचित जहाँ आवश्यकता थी वहाँ निभाया भी, लेकिन वह पिंड परदे के लिए नहीं बना था। उस स्वतंत्र पंखिनी के लिए खुला आकाश अनिवार्य था। उसके लिए जयपुर की पर्दानशींन महारानी बनने का अनुभव स्वेच्छा से स्वीकारे गए सोने के पिंजरे में कैद होने जैसा था।

लेकिन ये तो थीं स्वतंत्र पंखिनी। आकाश की व्यापकता, उसका खुलापन, उसका भरापन, उसके प्रति त प कुछ और ही थी। और उसने अपना आकाश बनाया भी सही। गायत्री देवी की आत्मकथा 'ए प्रिन्सेस रिमेम्बर्स (१९७८), उसमें स्थित स्वतंत्र पंखिनी के, अपने निजी आकाश की तलाश की कहानी कहती है।

राजरानी के जीवन की कथा होने के बावजूद यह आत्मकथा प्रत्येक स्त्री के जीवन की कथा कहती है। वैवाहिक जीवन और उसकी तंग दीवारों के बीच बंदीपन के भय से त्रस्त जीवन जीने वाली स्त्रियों के, जीवन के खुले आकाश में शांति के प्रति उनकी ललक और उसे प्राप्त करने के लिए किये गये अथक प्रयत्नों की बातें ही गायत्री देवी की इस पुस्तक की मुख्य कथावस्तु बन गई हैं। वो फिर गायत्री देवी हो, अमृता प्रीतम या 'सात पगलां आकाश' की नायिका हो, प्रत्येक स्त्री को अपने निजी आकाश की तलाश होती है।

गायत्री देवी की माँ कूच-बिहार की महारानी इन्दिरा, ब ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवा की इकलौती बेटी थी। गायकवा स्वयं नारीवादी थे। उन्होंने अपनी ल की को ल के की तरह पाला, लेकिन उम्रशुदा ल की की सगाई के मामले में सुधारवादी सयाजीराव उदार न रह सके। मराठा-परंपरा के अनुसार उन्होंने अपनी कच्ची उम्र की ल की की सगाई मराठा राजाओं में सिरमौर माने जाने वाले भोपाल के माधवराज सिंधिया के साथ की थी। महाराजा सिंधिया संतानहीन थे और उनकी उम्र उस समय ४०-४२वर्ष की थी।

लेकिन राजकुमारी इन्दिरा भी सुधारवादी पिता की पुत्री थी। विवाह की तैयारियाँ चल रही थीं। समग्र ब ौदा शहर बदंनवारों तथा हारों से सुशोभित हो रहा था। विवाह के ऐसे जोरदार उमंग-उत्साह के वातावरण में महाराजा सिंधिया का तार गायकवा को मिला। 'आपकी राजकुमारी समझती क्या है अपने आपको?' गायकवा की समझ में कुछ नहीं आया। सिंधिया के दूत ने आकर राजा साहब को बताया कि उनकी ला ली कुमारी ने अपने भावी पति को पत्र लिखकर कूच-विहार के राजकुमार के साथ चल रहे अपने प्रेम-प्रकरण की जानकारी दी थी। विवाह के उत्साह पर पानी फिर गया। पिता के क्रोध की सीमा न थी। कुमारी पर क ा प्रतिबंध लगा दिया गया। साल में एक बार माता-पिता के साथ इँग्लैंड के अलावा कहीं भी बाहर जाने की उन्हें अनुमति न थी, लेकिन भोले माँ-बाप को क्या पता कि मुग्धा बेटी का साहसिक प्रेमी उसे मिलने हर साल सात समंदर पार पहुँच जाता था। ऐसा लगातार तीन वर्ष तक चलता रहा। अंत में दोनों प्रेमियों ने भाग जाने की योजना बनाई। इस बात की जानकारी होते ही राजाजी को जबरदस्ती इस विवाह के लिए सहमति देनी प ी और लंडन शहर में वरवधू के मातापिता की अनुपस्थिति में इन्दिरा का विवाह हुआ।

महारानी इन्दिरा की सास सुनीतिदेवी, बंगाल के प्रसिद्ध समाजसुधारक ब्रह्मोसमाजी आचार्य केशवचन्द्र सेन की पुत्री थीं। उन्होंने १९२१ में अपनी आत्मकथा अँग्रेजी में प्रकट की। ऐसा करनेवाली वे प्रथम भारतीय स्त्री थीं। सुनीतिदेवी की सलाह लेने अँग्रेज शासक भी उनके पास आते थे।

ऐसे सुधारवादी राजघराने में पुत्री आएशा (गायत्री) का जन्म लंडन शहर में १९१९ के मई महीने में हुआ था। इँग्लैंड में मई महीना अर्थात् बसंती समय। ल की भी थी बसंती पुष्प के समान और इसलिए उसकी ब्रिटिश गवर्नेस उसे 'मे' (मई) कहकर ही बुलाती। तीन साल की छोटी उम्र में ही आएशा के पिता न रहे। अब सात साल के ब` भाई 'भैया' गद्दी के वारिस हुए। समझदार माता इन्दिरा ने अपने पाँचों बच्चों को कभी भी पिता का अभाव महसूस नहीं होने दिया। 'भैया' की ओर से महारानीजी ने वर्षों तक राज्य सँभाला।

महारानी इन्दिरा की महत्वाकांक्षा थी कि उनके बच्चे पढ़-लिखकर योग्य बनें, लेकिन कुमारी आएशा को पढ़ने-लिखने का शौक नहीं था। उसे तो शौक था खेलने का, शिकार का, प्राणियों का और सबसे अधिक शौक था हाथियों का। समय मिलते ही वह तुरंत हाथीखाने में पहुँच जाती और घंटों तक महावतों के साथ बातें करती। हाथी उसके लिए एक अदभुत प्राणी था। उसके अनुसार हाथी की सेवा करने वाले महावतों की सुख-सुविधा का ख्याल रखना ही राज्य का कर्तव्य था। वो महावतों के घर के नक्शे बनाती। आएशा के ऐसे हाथी प्रेम के पागलपन को लेकर कूच-बिहार की प्रजा उसे 'पगली राजकुमारी' कहकर संबोधित करती।

आएशा ने अपने भावी पति, जयपुर की गद्दी के वारिस, राजकुमार सवाई मानसिंहजी को प्रथम बार पाँच वर्ष की उम्र में देखा था। उस समय कुमार की उम्र तेरह वर्ष की थी। कूचबिहार द्वारा दिए गए किसी उत्सव के आमंत्रण में शामिल होने के लिए वे विशेष रूप से ऊटी आए थे। उसके बाद दोनों राजपरिवारों के बीच मैत्री संबंध के कारण राजकुमार जय बारम्बार कूचबिहार आते-जाते। बारह वर्ष की उम्र को पहुँचते-पहुँचते तो कुमारी आएशा रात-दिन सौन्दर्यवान जय के विचारों में खोई रहने लगी। जय उसके सपनों का राजकुमार था। जय जब भी उनके वहाँ आता तब आएशा को अपना रूम उसे देना प ता। उस रूम के ऊपर वाले रूम में उसे रात गुज़ारनी प ती। पर यह सब वह उत्साह से करती। ऊपर के रूम में पलंग पर सोई राजकुमारी लगातार यह सोचती कि यदि मेरे रूम की ज़मीन टूट जाये तो, मैं सीधी उसके रूम में जाकर गिरूँ। पर क्या फायदा। मेरी उसे क्या प ी है? मेरे जैसी तो कई ल कियों को वह पहचानता होगा। मुझमें ऐसा तो क्या है कि वह मेरी तरफ आकर्षित हो?

दस साल की उम्र में आएशा अपनी ब ी बहन मेनका के साथ स्वदेश छो कर स्विट्जरलैंड पहुँची। अब उनकी माँ की इच्छानुसार दोनों बहनों को यहीं पढ़ना था। भारतीय रजवा ों के वातावरण से ल कियों को दूर रखकर माँ इन्दिरा, उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व बने, ये चाहती थीं। विदेश की स्वतंत्रता और भारतीय रजवा ों के अनुरूप ठाठबाट के बीच दोनों कुमारियाँ वहाँ अभ्यास करने लगीं। सोलह वर्ष की उम्र में आएशा के सपनों के राजकुमार ने स्विट्जरलैंड में उसके सामने अपने प्रेम का प्रस्ताव रखा।

आएशा को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, लेकिन ब` उत्साह से उसने तुरन्त हाँ कह दी। दोनों प्रेमियों ने भविष्य की योजनाएँ बना लीं। उन्होंने निर्णय किया कि आएशा स्वयं जय के विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव की बात अपनी माँ को तुरन्त लिखे। फिर भारत पहुँचकर जय तुरंत आएशा की माँ राजमाता इन्दिरा से मिलने जाएगा और उनके समक्ष विवाह प्रस्ताव रखेगा।

इस प्रकार निर्णय करके जय गया, पर कुमारी आएशा यह सब माँ को किस तरह लिखे? किन शब्दों में लिखे? वह उलझन में प गई। उससे इस प्रकार का पत्र लिखा न गया। कुछ दिन के बाद जय का गुस्से से भरा तार आया। उसने मान लिया कि आएशा का विचार बदल गया होगा। जय के गुस्से के सामने आएशा का सहज संकोच कपूर बन कर उ गया। उसने तुरंत अपनी माँ को सारी बात लिखकर बता दी। माँ ने लौटती डाक से जवाब भेजा, 'तुझे पता भी है कि तू कैसे सपने देख रही है?' जय ने जब विवाह प्रस्ताव रखा तब माँ ने विवेक के साथ युक्तिपूर्वक मना कर दिया 'अभी जल्दी नहीं है दो-चार साल के बाद सोचेंगे।' अर्थ स्पष्ट था, लेकिन उस अर्थ को समझकर उसे स्वीकार कर ले तो वह जय नहीं। उसने शब्दार्थ ही ग्रहण किया और माँ के 'दो-चार' वर्ष पूरे होने का इन्तज़ार करने लगा।

देखते-देखते तो दो साल पूरे हो गए, फिर से विवाह प्रस्ताव के साथ जय उपस्थित हुआ। समझदार तथा अनुभवी माँ ने मुग्धा बेटी के प्रेमी के साथ अनिवार्य स्पष्टताएँ कर लीं। स्वतंत्र रूप से पली आएशा को पर्दे में कैद नहीं किया जा सकेगा, वह अपने अनुसार ही जियेगी। जय ने विश्वास दिलाया कि वह स्वयं पर्दा-प्रथा और रूढ़िवादिता के विरोधी थे। आएशा को पर्दे में रखने की उनकी लेशमात्र भी इच्छा न थी। इतना ही नहीं वे आएशा जैसी मुक्त वातावरण में पली कुमारी के साथ विवाह करके जयपुर की कूपमंडूक प्रजा को नई दृष्टि देना चाहते थे।

अपनी छोटी बहन का स्वाभाव 'भैया' से छिपा न था। विवाह पूर्व एक बार उन्होंने आएशा को अपने रूम में बुलाकर समझाया 'जय सुन्दर है, जवान है, उसे ल कियों की सोहबत अच्छी लगती है। वो तो ल कियों के प्रति आकर्षित होगा ही। विवाह होने मात्र से ही जय तेरी संपत्ति नहीं बन जाता। तुझे यह सबकुछ सहज रूप से स्वीकार करना होगा।' ये सलाह आएशा के गले न उतरी। 'लेकिन ये कैसे चल सकता है?' वह दृढ़तापूर्वक अपनी बात को पक` रही।

लेकिन विवाह के बाद वाली आएशा वह आएशा नहीं थी। ऊटी में हनीमून के बाद वापिस लौटते समय जय की इच्छा थो` दिन मैसूर में रुकने की थी। मैसूर में जोधपुर हाऊस में उनके रहने की व्यवस्था थी। जय की पूर्व पत्नियाँ बुआ-भतीजी थीं। वे दोनों जोधपुर घराने की राजकुमारियाँ थीं। गायत्रीदेवी ने जरा भी आनाकानी किए बिना उन्हें जोधपुर हाऊस में रहने की सम्मति दे दी। अधूरे में जैसे पूरा हुआ हो इस तरह जैसे ही वहाँ पहुँचे तो देखा जय की दूसरी पत्नी अपने चारों बच्चों के साथ वहाँ आई हुई थीं। आएशा ने मधुरजनी की अवधि के दौरान सहपत्नी की निरन्तर उपस्थिति को हँसते मुँह स्वीकार किया। जोदीदी (जय की द्वितीय पत्नी) की उपस्थिति उसे खटकी है, इसका जरा-सा भी उल्लेख उन्होंने नहीं किया।

१९४७ में स्वतंत्रता के बाद रजवा ों का विलीनीकरण हो गया। गायत्रीदेवी के पति महाराज सवाई मानसिंह ने स्वेच्छा से इस परिवर्तन को स्वीकारा। अब वे राजस्थान के राजप्रमुख थे, परंतु रजवा ों के विलीनीकरण की प्रक्रिया में ठाठबाट भरे दिनों का भी अंत हो गया। शाही खर्च को पहुँच पाने जितनी अब कोई विशेष आय भी नहीं रही। ऐसी परिस्थिति में रानी जी ने खर्च पर ध्यान देना शुरू किया।

रानीजी ने राज्य का भंडार अपने हाथ में ले लिया। जैसे-जैसे वे भंडार पर ध्यान देती जा रही थीं वैसे-वैसे आश्चर्यपूर्ण बातें सामने आ रही थीं। आज तक राजाजी जहाँ-जहाँ जाते वहाँ-वहाँ उनके सारे दरबारी, उनके द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली विशेष ब्रांड की सिगरेट ही उन्हें ऑफर करते। अपने दरबारियों का ऐसा प्रेम और उत्साह देखकर राजाजी अभिभूत हो जाते। कितना ध्यान रखते हैं, मेरी छोटी से छोटी सुविधा का? लेकिन अब रहस्य समझ में आया। सारे दरबारी राजाजी ही वाली ब्रांड का इस्तेमाल करते और वह भी राज्य के खर्चे पर। द्वितीय रानीजी (जोदीदी) हमेशा विदेश से विशेष रूप से मँगाया गया मिनिरल वॉटर ही पीतीं। वॉटर की जितनी मात्रा मँगवाई जाती वह देखकर गायत्रीदेवी को आश्चर्य हुआ। जरा सूक्ष्म रूप से जाँच करने पर पता चला कि रानीजी जो पानी पीतीं वही उनकी दासी और दासी की बिल्ली भी पीती।

इस तरह का गलत खर्च तो नहीं चलाया जा सकता। रानीजी ने क ाई से काम लेना शुरू किया। राजभंडार अब केवल राजपरिवार के लिए ही था। दरबारियों को यह कठिन लगा। महारानी क्या ऐसी होती है। यह तो एकदम कंजूस है, इसप्रकार की बातें प्रजाजनों तक पहुँचने लगीं और जयपुर की प्रजा ने इन किस्सों के न जाने कितने ही अफसाने बना डाले, लकिन रानीजी को इसकी परवाह न थी।

इसी समय के दौरान राजस्थान के मुख्यमंत्री ने रानीजी को काँग्रेस से चुनाव ल ने का आमंत्रण दिया। अपने पति के दुखभरे दिनों के लिए जिम्मेदार और देशी रजवा ों के प्रति सौतेली माँ-सा व्यवहार रखने वाली काँग्रेस में शामिल होना, गायत्रीदेवी के लिए संभव नहीं था। यूँ भी सार्वजनिक जीवन में प्रविष्ट होने की उन्हें लेशमात्र भी इच्छा नहीं थी, लेकिन सोच के इस बीज को काँग्रेस के राजा-विरोधी बर्ताव से सिंचित होकर कालक्रम से पल्लवित होते देर न लगी और वे राजगोपालाचारी की इच्छानुसार स्वतंत्र पार्टी में शामिल हो गईं।

महारानीजी ने जब परंपरावादी व्यवहार छो कर सार्वजनिक रूप से दिखना शुरू किया, पति के साथ जीप-कार में घूमना शुरू किया, पैंट-शर्ट पहनकर शिकार पर जाना शुरू किया तब जयपुर की प्रजा

को भारी आघात लगा था, पर उसके साथ-साथ प्रजा उनके निःस्वार्थी प्रेमपूर्ण स्वाभाव से भी वाकिफ़ हो गई थी और इसीलिए जयपुर की प्रजा एक तरफ उनकी स्वच्छंदता संबंधी गाने बनाती तो दूसरी तरफ सुंदरी महारानी पैंट-शर्ट में सजकर निकले तो उन्हें देखने के लिए टोलों में बँट जाती। ऐसे विचित्र 'लव-हेट रिलेशनशिप' के बीच रानीजी को चुनाव में जिताने के लिए प्रजा कुछ भी करने को तैयार रहती और हर बार रानीजी विश्वविक्रमी बहुमती से चुनकर आतीं।

१९६४ में लालबहादुर शास्त्रीजी ने जयपुर महाराजा को भारत के एम्बेसेडर के रूप में स्पेन भेजा। राजाजी ने काँग्रेस के आमंत्रण को स्वीकार किया, यह बात गायत्रीदेवी को अच्छी न लगी। इस बात को लेकर थो` मतभेद भी हुए और गायत्रीदेवी ने स्वतंत्र पक्ष छो ने की इच्छा भी व्यक्त की। स्पेन की एम्बेसेडरशिप के दौरान एक बार इंग्लैंड में खेली जानेवाली पोलो मैच में एम्पायर के रूप में कार्य करते-करते राजाजी को अटैक आया और वहाँ खेल के मैदान में ही पोलो के खेल के उस चैम्पियन की मृत्यु हुई।

बारह वर्ष से लगभग पचास वर्ष की उम्र तक लगालार वे जिसके लिए जीती रहीं उनके बिना गायत्रीदेवी को जीवन शून्य लगने लगा। आत्महत्या के ख्याल भी आए, लेकिन उनके ल के का क्या होगा? इस ख्याल से वे असह्य वेदना भरे दिन बिताने लगी। बाह्य जगत की प्रत्येक प्रवृति यथावत थी, राजकीय कामकाज भी रहता फिर भी जैसे अब वे प्राण के बिना शरीर के समान थीं। इस अर्थ में उनकी आत्मकथा के अंतिम वाक्य जरा आश्चर्यचकित करते हैं। आज़ाद पंखिनी को भी अपने नी की आवश्यकता तो होगी ही, साथी का वियोग तो उसे भी कचोटेगा ही, परंतु पति की मृत्यु के साथ अपने अस्तित्व-मात्र का अस्वीकार कुछ आश्चर्यचकित जरूर करता है।

ऐसा हमेशा नहीं होता कि कोई पुस्तक आत्म-कथा होने मात्र से ही सब कुछ सत्य प्रकट करे। कई बार आत्मकथा में विभिन्न कारणों से काफी कुछ गुप्त रखना होता है। गायत्रीदेवी की आत्मकथा में भी उनके व्यक्तिगत जीवन के कई पहलू अछूते रह गए हैं, लेकिन फिर भी इस पुस्तक में एक स्वतंत्र मिजाजवाली राजकुमारी का व्यक्तित्व संपूर्णतः मुखरित हो उठा है।

स्वतंत्रता !

पाराशर गौ

मैं,
महाभारत के पात्रों की तरह
अपनी-अपनी सीमाओं में बँधकर
जीना नहीं चाहता हूँ।
मैं,
भीष्म पितामह की तरह
जो उचित-अनुचित को जानते हुए भी
अर्थ-अनर्थ को समझते हुए भी
मौनता को ओढ़कर
प्रतिज्ञाओं के खूँटों से बँधकर
सब देखता रहा
नहीं जीना चाहता।
मैं,
गांधारी भी नहीं बनना चाहता
जो जानबूझकर अपनी आँखों पर पट्टी बाँध दे
आँखें होते हुये भी
अन्धेपन को ओढ़ ले।
मैं,
कुन्ती की तरह
जीने के पक्ष में भी नहीं
जो अपने पुत्र को अपना पुत्र न कह सके।
मैं तो देखना चाहता हूँ तुम्हारी दूरदर्शिता
तुम्हारे इर्द-गिर्द जु` चाटुकारों को जो
तुम्हारे अंधे होने का लाभ
व उसकी सीमा में बँधे होने की
त्रासदी का लाभ उठाते हैं।
माना,
पल भर के लिए तुम
मेरी आँख पर पट्टी बाँध भी दो तो
मेरी खुली जुबान का क्या करोगे? बोलो?
काश,
उस युग में कोई ऐसा भी पैदा हुआ होता
जिसे ना तो दिखाई देता, न सुनाई देता
और ना ही बोल पाता
वो तो जीता केवल अपने लिए
मरता अपने लिए
कम से कम
वो अपने को स्वतंत्र तो समझता !

पुरुषार्थ, ढ़लता सूरज या नया सवेरा

स्नेह ठाकुर

नई शताब्दी इक्कीसवीं सदी में पदार्पण करने वाले पुरुषों के पुरुषार्थ ढ़लते सूरज की रोशनी की तरह मद्धिम प ते हुए तारों की टिमटिमाहट में बदलते जा रहे हैं या पिछली सदियों के अनौचित्य पुरुषार्थजनित अहंकारी रात की काली चादर को बेंधते हुए नए उगते सूरज के प्रकाश से दैदीप्यमान हो, नई सदी के प्रथम चरण को प्रकाशित करने जा रहे हैं?

तृष्णा व धीरेन्द्र के घर उनके पुत्र के विवाह-समारोह हेतु पार्टी हो रही थी। हमें भी निमंत्रित किया गया था, अतः हम भी परिवार सहित वहाँ मौजूद थे। रंग-विरंगे परिधानों में सजे हुए कुछ नए जो े थे और कुछ वयस्क।

जैसा कि हर पार्टी में होता है यहाँ भी किसी न किसी विषय पर बहस गर्मजोशी से जारी थी। पहले राजनीति पर और फिर धारा-प्रवाह मु प ा आज के सदाबहार विषय 'मिलीनियम' के आगमन पर कम्प्यूटर की शोचनीय दशा के मुद्दे पर।

द्विजेन्द्र कह रहे थे कि, "भाई मैं तो अक्टूबर में हिन्दुस्तान चला जाऊँगा। पहले तो दशहरा, दीवाली का आनन्द लूँगा और फिर जब तुम लोग यहाँ बैठे-बैठे कम्प्यूटर के 'मिलीनियम-बग' से माथा फो रहे होगे, मैं मजे से वहाँ कुनकुनी धूप सेंक रहा होऊँगा।"

'तो ज़नाब आपके ख़्याल से भारत के कम्प्यूटरों पर 'मिलीनियम-बग' का कोई असर नहीं होगा? माना कि भारत देश महान् है फिर भी इसे वहाँ भी मक्खी-मच्छर की तरह चुटकी में मसला नहीं जा सकता' सत्येन ने दोनाली के एक ओर से प्रश्न व दूसरी ओर से सरकाज़्म दागते हुए कहा।

'ठीक है भाई सत्येन, होगा असर होगा। तुम्हारे इस 'बग' ने तो जान खा रक्खी है। पर ज़नाब जहाँ मैं जा रहा हूँ वहाँ आपके ये कम्प्यूटर वगैरह नहीं होंगे। ब ी पावन भूमि है, नैसर्गिक सौन्दर्यता से परिपूर्ण।'

'अरे साहब, कहाँ जा रहे हैं आप?' अशोक भी उत्सुकता से भरे मैदान में कूद प े।

द्विजेन्द्र ने रहस्यात्मकता का माहौल बनाते हुए धीरे से कहा, 'चित्रकूट'। वहाँ के ज़मींदार साहब से पारिवारिक सम्बन्ध हैं। बस मैं तो वहाँ शांति से बैठकर कुछ समय बिताऊँगा। कभी हनुमान धारा की सीढ़ियाँ चढ़ ऊँचे शिखर पर बैठा धरती की सुन्दरता निहारूँगा या कभी कामदगिरि पर्वत की परिक्रमा कर, चक्कर पे चक्कर काट कर तन्दुरुस्ती बनाऊँगा, ऊपर से हैल्थ क्लब के पैसे बचाऊँगा। यहाँ तो बस 'ट्रेड-मिल' पर चलते जाओ, चलते जाओ, न सीनरी बदले न कुछ और, वही नीरस एक्सरसाइज़। एक ही कमरे के एक ही कोने में कभी मशीन पर चल लो, और ज्यादा समय हुआ तो कभी वहीं पर दूसरे कोने में साईकल चला लो. . . .' वो कान को हाथ लगाते हुए व स ा-सा मुँह बनाते हुए बोले, 'तोबा तोबा. . . .इन सबसे छुट्टी। और फिर मैं मन्दाकिनी गंगा में स्नान तकरीबन रोज ही कर लिया करूँगा। यहाँ के गरम पानी के पैसे बचे और वहाँ पुण्य कमा लिया। गाहेबगाहे गुप्त गोदावरी के शीतल जल में भी पैर डुबो आया करूँगा। बस मजे-ही-मजे, आनन्द ही आनन्द। इस मशीनी सभ्यता की सिरदर्दी बिल्कुल नहीं।'

धीरेन्द्र हँस कर बोले, 'भई, आपने क्या मज़े की ज़िन्दगी का ख़ाका खींचा हैं, हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा ही चोखा। यथार्थ में पैसे भी बचा लिए, ऊपर से अपनी समझ में पुण्य भी कमा लिया। हालाँकि आपकी नैसर्गिक सुन्दरता वाली बात से नयन जु ाने व दूसरी और बातों का भी कायल हूँ पर ये पुण्य कमाने वाली बात पर तो अच्छी-खासी, लम्बी-चौ ी बहस हो सकती है महाशय। खैर छो ि ए, इस समय यही मान लेते हैं कि आपके तो पौ-बारह, दोनो ही हाथों में लड्डू। 'यू कांट हैव योर केक एंड ईट ईट टू' की कहावत को तो आपने निराधार सिद्ध कर दिया। वो एक लम्बी साँस लेते हुए आगे बोले, 'साहब रंजिश हो रही है आप की किस्मत से। आप तो रिटायर हो गए हैं जो मर्ज़ी करें। अपने राम तो यहीं रहेंगे, कहीं आने जाने वाले नहीं। हाँ, अलबत्ता यह ज़रूर सोच रहा हूँ कि बैंक से काफी पैसा निकलवा कर रख लूँ। कम्प्यूटरों के चक्करों में मेहनत से जो ी

यह थो ी-बहुत कमाई ना कहीं भेंट हो जाए। अगर ऐसा हुआ तो यह गरीब बन्दा कहीं का न बचेगा, बेमौत मारा जाएगा।'

रवि जो पुलिस अधिकारी हैं चटकारे लेते हुए बोले, 'अरे साहब फिर तो मज़ा आ गया। अगर आप जैसे ही कुछ और खुदा के बन्दे ऐसी ही सोच रखने लगें तो कम से कम मेरी नौकरी तो कुछ साल के लिए और पक्की हो जाएगी।' वो जोरदार ठहाका लगाकर बोले, 'शताब्दी तो बाद में पलटा खाएगी, उससे पहले ही अपनी किस्मत पलट जाएगी। अपनी एक्सटेन्शन पक्की। बस फिर तो चाँदी-ही-चाँदी।' गि गि ाने का नाटक करते हुए वो आगे बोले, 'बरखुरदार इस भले काम में देरी मत करो, अब तो बस जल्दी से अपने जैसे ढ़ेर सारे लोग पैदा कर लो। जैसे ही आप लोगों के मनसूबों की भनक चोरों को मिलेगी ध ाध चोरियाँ शुरू हो जाएँगी। हा! हा! हा! . . . पुलिस वालों की डिमांड बढ़ेगी, नई नियुक्तियाँ होएँगी।' नाटकीय चिरौरी करते हुए वो बोले, 'श्रीमान् शीघ्रम् शुभम्। आपसे हाथ जो कर बिनती है कि अपने इरादों को बुलन्द कीजिए और पुलिस को कुछ कर दिखाने का मौका दीजिए।'

इतने में नलिनी के ठहाके पर सबकी नज़रें उधर मु गईं। पुरुषों के प्रश्नवाचक चेहरों को देखते हुए नलिनी ने हँसी रोक, कुछ नए जो ों की तरफ इशारा कर चुटकी लेते हुए कहा, 'आप लोग तो कम्प्यूटर के इस मुए 'बग' को लेकर झग रहे हैं और यहाँ तो आपकी पीढ़ी का पुरुषार्थ ही दम तो रहा है, आखिरी साँसें ले रहा है, ढ़लता सूरज बन रहा है।'

इक्कीसवीं सदी में पदार्पण करने वाला पुरुषार्थ क्या वास्तव में ढ़लता सूरज है? या एक नये सवेरे का उगता सूरज? आइए इस मुँह बाए प्रश्न की विभिन्न दृष्टिकोणों से मीमांसा करें।

अभी तक की पुरुष-छवि जन्मदाता व पालनकर्त्ता के रूप में सर्वव्यापी थी। पर अब सिर्फ़ इतने से ही काम नहीं चलने वाला। आज के ज़माने में जब कि नारी अप्राकृतिक साधनों से गर्भ धारण कर सकती है व स्वयं ही स्वयं और बच्चों का लालन-पालन करने में समर्थ हो गई है, तो पुरुष की कीमत, उसकी महत्ता पहले की अपेक्षा तो कम होनी ही थी।

एन्थ्रोपोलोजिस्ट लॉयनल टाइगर जो 'दि डिक्लाइन ऑफ मेल्स' पुस्तक के लेखक हैं, की धारणा है कि स्त्री और पुरुष के लिंङ्ग-युद्ध मे पुरुष का पल ा हल्का प रहा है और नारी का पल ा भारी होता जा रहा है।

अपनी धारणा के पक्ष में उन्होंने एक उदाहरण देते हुए इस ओर इंगित किया कि कनेडियन विश्वविद्यालयों में पुरुषों की अपेक्षा बीस प्रतिशत नारियाँ ज्यादा हैं। परिणामतः भविष्य में ज्यादा नारियाँ ऊँचे पदों की प्रत्याशी होएँगी। स्वाभाविकतः उनकी उच्च शिक्षा उन्हें सर्वोच्च पदों की प्रत्याशी होने व 'पॉवर' की लगाम अपने हाथों में थामने के लिए समर्थ बनाएगी।

लॉयनल टाइगर की मान्यता है कि यह झुकाव अभी से ही देखा जा सकता है। सत्तर दशक के अंतिम समय से, नब्बे दशक के मध्य में, अमेरिका में स्त्रियों की औसत आमदनी में ७.६ प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई है जब कि आदमियों की करीब-करीब इससे दुगुनी गिरी है।

साथ ही जहाँ पुरुषों के दृढ़ विश्वास व साहस में ह्रास नज़र आ रहा है वहीं नारियों का आत्म-विश्वास सीढ़ी दर सीढ़ी बढ़ रहा है, उस पर एक के बाद दूसरी तह चढ़ रही है। युगों से बने पुरुष-क्षेत्र में शनैः-शनैः सा ियों और स्कर्टों का प्रवेश हो रहा है।

विशेष तौर पर 'पिल' बर्थ कन्ट्रोल के विषय पर टाइगर साहब जो रटगर्स यूनिवर्सिटी, न्यू जर्सी में प्रोफेसर हैं, और जिन्होंने 'मेल बांडिंग' मुहावरे को गढ़ा है, पसीना छु ा रहे हैं। उनके मुताबिक 'बर्थ कन्ट्रोल पिल' के रहमोकरम से पुरुष परिवार से धकेला जा रहा हैं क्योंकि इन गोलियों की वजह से सन्तानोत्पत्ति के मामले में स्त्री का कथन अंतिम कथन है।

आज जहाँ एक ओर पुरुषों का अपने 'स्पर्म' की 'डेस्टिनी' पर, शुक्राणु के भाग्य पर कोई कन्ट्रोल नहीं रह गया है वहीं दूसरी ओर खुदा न खास्ता अगर वो किसी नन्हीं जान को जन्म दे देते हैं तो वो चाहे चाहें या ना चाहें, उसकी सारी आर्थिक जिम्मेदारियाँ उन्हें ओढ़नी ही प ेगी। उससे वो अपना दामन छिटक दूर नहीं हो सकते।

अमेरिका में यदि तीस प्रतिशत बच्चे 'सिंगल माँ' से जन्म लेते हैं तो तीस प्रतिशत पुरुष परिवार से वंचित होते हैं। अतः वो पुरुष जिन्होंने विवाह नहीं किया है, यहाँ मार खा जाते हैं। सम्बन्ध भावनात्मक न होकर आर्थिक रह जाते हैं।

सन्तानोत्पत्ति को रोकने की 'पिल' की इस अदृश्य क्षमता से पहले, दोनो हिस्सेदारों का इस विषय पर समवेत निर्णय था, पर इस निरोधक गोली ने पुरुष के हाथों से सारे निर्णय छीन कर स्त्री को एकाधिकार थमा दिया है।

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को निरोधक गोली ने इस स्तर पर ला कर ख ा कर दिया है या नहीं, बहस के इस मुद्दे को नज़र-अन्दाज़ करने के बावजूद भी यह तो मानना ही प ेगा कि जाती हुई सदी के उत्तरार्द्ध में सम्बन्धों में आश्चर्यजनक परिवर्तन आए हैं। इक्कीसवीं सदी में यह परिवर्तन कौन-सा रूप लेगा, किस धरातल पर ख ा होगा व किस दिशा की ओर मु ेगा, यह भविष्य ही बता सकता है।

पर हाँ, जिस प्रकार यथार्थ और कल्पनाशक्ति के सहारे लॉयनल टाइगर ने अपने निष्कर्ष निकाले हैं, उसी प्रकार यथार्थ और अपनी कल्पनाशक्ति का सम्बल ले कर हेलेन फिशर ने, जो लॉयनल टाइगर की ही मित्र और सहकर्मी हैं, हाल ही में अपनी पुस्तक 'दि फर्स्ट सेक्स' प्रकाशित की है जिसमें लिंङ्ग की शरीर विज्ञान शास्त्र सम्बन्धी विभिन्नताएँ व वह हमारे जीवन को कैसे प्रभावित करती हैं, बताया है। उनका मत है कि, 'स्त्री और पुरुष विभिन्न रूप में बनाए गए हैं और वो विभिन्न कामों के लिए उपयोगी हैं।'

हेलेन फिशर के विचार से आज के इतिहास में नारियों के जन्मजात गुणों की माँग बढ़ रही है। नारियाँ नीतिकुशल, व्यवहारकुशल, कूटनीतिज्ञ होने के साथ-ही-साथ मध्यस्थता के क्षेत्र में भी दक्ष हैं। इन दोनो क्षमताओं का आज की आर्थिक व्यवस्थाओं में बहुत महत्व है।

आज व आने वाले युग में नारी के ये स्वाभावजन्य गुण बहुत ही उपयोगी होंगे जिनका इनाम उन्हें पद, उच्च वेतन, पद की महिमा से मंडित अन्य सुविधाओं द्वारा प्राप्त होगा।

यदि लॉयनल टाइगर के कथनानुसार 'पिल' पुरुषों को परिवार से दूर करती है, और फिशर की मान्यता कि नारियाँ अपने विशेष गुणों के कारष आगे बढ़ रही हैं तो क्या पुराना 'पॉवर-स्ट्रक्चर' शक्ति-व्यवस्था का ढ़ाँचा चरमरा रहा है?

क्या इसका मतलब पुरुष लुप्तप्राय प्राणी हो रहे हैं? क्या हम उस नारी-प्रधान सन्सार की ओर अग्रसर हो रहे हैं जहाँ पुरुष देवी के चरणों का दास-मात्र होगा?

नहीं, ऐसा सन्देहात्मक है।

टाइगर साहब की सोच कुछ उथली-उथली लग रही है। उनका यह दृष्किोंण कि बर्थ कन्ट्रोल पिल की वजह से पुरुष को यह कभी पता ही नहीं चलेगा कि उसने नारी में अंकुर का बीजारोपण किया या नहीं, इस धारणा पर आधारित है कि नारी जान-बूझ कर पुरुष से इस बात को छिपाकर उसे चकमा देगी, गले के नीचे से नहीं उतरती है। सम्भवतः कुछ स्त्रियाँ ऐसी हो सकती हैं, अधिकांश नहीं।

सामान्यतः सहवास हरदम जन्मोत्पत्ति के लिए ही नहीं होता। यह एक नैसर्गिक सहभावना है। दूसरी बात यदि गर्भ-निरोधक गोलियों का प्रयोग हो भी रहा है तो आज के एच.आई.वी व एड्स सम्बन्धित बढ़ते रोगों के परिप्रेक्ष्य में पश्चिमी देशों में भी 'कैज़ुअल' आकस्मिक या सामयिक सहवास अन्य निरोधकों के साथ ही तर्कसंगत है। अतः यह सन्देहात्मक है कि 'पिल' पुरुषों का परिवार के दृश्य-पटल से पटाक्षेप करा रही है।

टाइगर का भय कि नारियाँ सन्सार को अपनी मुठ्ठी में समेट उस पर हुकूमत करने वाली हैं, को निर्मूल बताते हुए फिशर इस ओर इंगित करती हैं कि यद्यपि नारी शक्ति में बढ़ोत्तरी हुई है पर वो पुरुषों को सन्सार-पटल से खदे नहीं रहीं हैं।

अधिकांश स्त्रियाँ अभी भी उच्चस्थ पदासीन नहीं हैं। यह सत्य है कि स्त्रियाँ विभिन्न कार्यक्षेत्रों में पदार्पण कर चुकी हैं पर उन्होंने पुरुषों की सारी ब ी-ब ी नौकरियाँ छीन कर हथिया नहीं ली हैं, और फिर पुरुषों के अपने महत्वपूर्ण गुण हैं।

अतः यह कहना ज्यादा तर्कसंगत होगा कि पुरुषार्थ में घटौती की बनिस्बत, आज हम उस धरातल पर पहुँच गए हैं जो दो 'समान' बराबर वालों के मिलन का प्रांगण बना है। यह भाव घरेलू क्षेत्रों में सबसे ज्यादा परिलक्षित हो रहा है।

अब दोनों ही पक्ष, वैवाहिक सम्बन्धों में एक ब ा और एक छोटा की भावना से विलग हो, एक-दूसरे के सहयोगी, पार्टनर के रूप में समानता के धरातल पर ख े हैं। दोनों में सम-भाव है। पुरुषार्थ की छवि बदल गई है। वो अब हावी होने वाला हौआ नहीं रह गया है। सिर्फ़ शक्ति प्रदर्शन के लिए शक्ति-प्रदर्शनता पुरुषार्थ नहीं रह गया है, कोमल भावनाएँ भी लौह-शृंखला काट सकती हैं।

आज के युग में पति-पत्नी दोनों ही समान रूप से आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए उत्तरदायी हैं क्योंकि जीविकोपार्जन सम्बन्धी योग्यताओं में दोनों ही सक्षम हैं। उनके कार्यक्षेत्र भले ही भिन्न हों। नारी ने आर्थिक पराधीनता का चोला उतार स्वावलम्बता अर्जित कर ली है। पत्नी सहचरी, सहभागिनी है, नौकरानी नहीं। पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक हैं, सहयोगी हैं, प्रतिद्वन्द्वी नहीं। जीवन-रथ को सुचारू रूप से चलाने वाले दो पहिये हैं। दोनों ही एक-दूसरे पर समान रूप से आश्रित।

"पुरुष और नारी
शक्ति और संवेदनशील प्रकृति
दो आत्माएँ
पूर्णता में।
एक-दूसरे से लिपटी
एक-दूसरे पर आश्रित
लताओं की तरह गुँथीं।
आलिंगनबद्ध ऐसे
सुख और दुख जैसे
आज और कल जैसे
दिन और रात जैसे।
नयनों को जु ाने वाला दृश्य
एक सपना साकार
ऊषा-दिनकर-मिलन
एक भव्य सूर्योदय
प्रेमियों का स्वर्ग।
पुरुष और नारी
शक्ति और संवेदनशील प्रकृति
दो आत्माएँ
पूर्णता में।"

स्त्रियों के आर्थिक योगदान से, पालनकर्ता की भूमिका निभाता, कोल्हू के बैल की तरह पिसते पुरुष को राहत ही मिली है। उसके स्कंधों से बोझ कम ही हुआ है।

पुरुष प्रधानता व नारी आन्दोलन, अगर हम इन दोनो ही का आँचल छो नई शताब्दी में प्रवेश करें और उसे सहयोगात्मक प्रधान बनाएँ तो जीवन ज्यादा सुखमय होगा। ना कोई छोटा ना कोई ब ा, दोनो ही समान, दोनों ही विशेष।

जिस दिन नारी-पुरुष के सम्बन्ध ऐसे हो जाएँ जब वो दोनों अपना अहं त्यागकर यह कह सकें कि,

"मैं मैं नहीं और तू तू नहीं
कुछ मैं तुझमें और कुछ तू मुझमें
स्वयं में पूर्ण दोनों नहीं
दोनों इकाई सिमटी समग्र में।"

तब उस परिस्थिति में, एक-दूसरे के सराहनीय उज्ज्वल पक्ष को जो ता, विभिन्नताओं की एकता से परिपूर्ण जीवन अवश्यमेव ही आकाश की बुलन्दियों को छूने में समर्थ होगा। अतः,

"ऐ युग,
बदल दो पुरुषार्थ की परिभाषा।
नहीं है पुरुषार्थ झूठी मर्यादा में
नहीं है पुरुषार्थ उग्रता में
नहीं है पुरुषार्थ शक्ति-प्रदर्शनता में

नहीं है पुरुषार्थ दंडता में
नहीं है पुरुषार्थ अहमता में
नहीं है पुरुषार्थ सामर्थ्यता में।

पुरुषार्थ तो है प्यार की भाषा
एक स्नेह-तन्तु ऐसा
जो कोमल सुमन-पंखु ी-सा
और सशक्त लौह-तार-सा"

माँ

सूर्यकांत नागर

प ोसिन पुष्पा ने श्यामा चाची को ढ़ेर सारी रोटियाँ थोपते देखा तो दंग रह गई। सब्जी से भी बढ़िया महक आ रही थी। अकेली जान, अचानक क्या हो गया ! बूढ़ी-बीमार, अपना तो कुछ होता नहीं, दूसरों का करने चली। बेटे ने अलग कर दिया। नीचे अकेली रहती है। शुरू में कुछ दिनों तक ऊपर से ही खाना आता रहा। लेकिन जब देखा कि अक्सर कच्चा-पक्का, बासी, बचा-खुचा होता तो खुद अपना बनाना शुरू कर दिया। जैसे-तैसे अपने लिए दो रोटियाँ सेंक लेती हैं। देखकर पुष्पा चकित इसलिए भी है कि झुलसे चेहरे पर थकान का कोई चिन्ह नहीं है। उल्टे सुख-सुकून की एक रेखा खिंची हुई है।

'क्या कोई मेहमान आने वाला है?' पुष्पा ने पूछा।

'अरे भाई, मेरे यहाँ कौन आता है?'

'फिर यह सब क्यों?'

'बच्चों के लिए।'

'बच्चों के लिए? बच्चे जिनके ब` तुमसे सीधे मुँह बात नहीं करते।'

'आज ऊपर गैस खत्म हो गई थी और अभी तक उसका कोई ठिकाना नहीं दिख रहा है। सुबह भी कुछ नहीं पका। बच्चे ब्रेड आदि खाकर स्कूल गए और शायद बेटा-बहू भी बिना कुछ खाये ही निकल गए। शाम को मोहन और बहू थके-हारे काम से और बच्चे भूखे-प्यासे लौटेंगे तो कैसे-क्या होगा ! एक बार बेटे-बहू को तो भूखा रख भी दूँ, पर तीनों बच्चों को कैसे भूखा रहने दूँ?'

'तीनों बच्चों को?' चकित हो पुष्पा ने पूछा।

'हाँ तीनों को। दो जो स्कूल से लौटने वाले हैं और तीसरा जिसे बहू जल्दी ही जन्म देने वाली है।'

बिखराव

मधुप शर्मा

ठीक ही तो है. . . सभी कुछ बिखरा प ा है, मैं समेट नहीं पाता हूँ. . . . इसी मेज़ पर, इसी छोटी-सी मेज़ पर, जहाँ बैठा मैं यह लिख रहा हूँ, किताबें, नए-पुराने मासिक-पत्र, पिछले कई दिनों के दैनिक-पत्र, कोरे काग़ज़, कलम, पेन्सिल, शीशा, कंघा, हजामत का सामान, मैला रूमाल, धोबी से आए हुए कप े, बस या रेलगा ी के पुराने टिकट, टूथब्रश, दवा की शीशी, एनासिन का पैकेट, किराये की रसीदें, कैंची, जवाब के मुहताज दो-चार ख़त, कुछ पुराने चित्र और पता नहीं क्या-क्या, हमेशा इस मेज़ पर यूँ ही बिखरा रहता है। छोटी बहन ठीक किया करती है। सफ़ाई करते समय, या मेरी नज़रों से ओझल हो गई किसी चीज़ के सम्बन्ध में मेरे पूछने पर दो-एक बार उसने कहा भी, 'भैया आप तो सब-कुछ बिखरा के रखते हैं, कोई चीज़ मिले भी तो कैसे?' जब-जब उसने ज़बान से यह कहा है, तब तो कहा ही है, जब ज़रा गंभीर-सी मुद्रा बनाकर उसने चुपचाप इस मेज़ को ठीक किया है, तब भी उसके माथे की हल्की-सी शिकन ने मुझसे यही कहा, कि तुम्हारा तो सब-कुछ बिखरा रहता है, हमेशा। और इस कथन में कितनी ब ी सच्चाई है, घट में सागर के समान इसका कितना विस्तृत अर्थ है, यह शायद वह भी नहीं जानती। बहन की बात को सत्य मानते हुए भी इस मेज़ की चीज़ों को ठीक रखने में कभी सहायक नहीं हुआ। बल्कि अपनी आदत के अनुसार उन्हें उसी तरह अस्त-व्यस्त ढ़ंग से फेंकता-रखता रहा हूँ। ख़्याल भी कई बार आया, आखिर किसी भी दूसरे को कष्ट देने का अधिकार ही मुझे क्या है ! वह ठीक करती रहे, सँवारती रहे और मैं बिगा ता रहूँ, भला यह भी कोई बात है? लेकिन फिर भी मैं अपने-आप, उन बिखरी हुई चीज़ों को कभी समेट नहीं पाया। और तो और उसकी इस बात का जवाब भी मैं कभी नहीं दे सका, शायद इसलिए कि बात का जवाब देने के लिए भी अपने विचारों को, कुछ मानसिक शक्तियों को, जो समेटना प ता है, वह मैं कर नहीं पाता हूँ। बल्कि इस मेज़ का बिखराव मेरे समस्त जीवन का रूप धारण कर लेता है। मन ही मन मैं कहता हूँ, भोली बहन तुमने केवल यह मेज़ देखी है, मेज़ पर की बिखरी हुई चीज़ें देखी हैं, मेरा तो समस्त जीवन ही इस तरह बिखरा प ा है। मैं कुछ भी तो समेट नहीं पाता हूँ। और यह मेज़ तो एक नमूना-भर है जीवन का। यह अस्त-व्यस्त न हो तो शायद मुझे अपना यह बिखरा हुआ जीवन भी ओझल-सा हो गया लगे, खो सा गया मालूम दे।

हाँ, जीवन के दो ही तो पहलू हैं, मानसिक और बाह्य। जीवन की शुष्कता को मैंने हृदय की गहराइयों से उभरती हुई कुछ कोमल भावनाओं के रस में सराबोर कर देना चाहा है, शीतल, सुगंधित, नशीली-सी चंचल पवन के झोंकों-सी, आने-जाने वाले भावों को मैंने शब्दों, रंगों या रेखाओं की डोर में बाँधकर स्थिर कर लेना चाहा है। इस मेज़ पर दाएँ हाथ को प ा फ़ाइलों का यह ढ़ेर इसी प्रयास का साक्षी है। जान-पहचान वालों ने सुनकर, देखकर सराहना की है। किसी ने कहा, वाह ब ी जोरदार कहानी है, छपवा डालो, दो-चार कहानियाँ भी इस तरह की प्रकाशित हो जाएँ, तो नाम हो जाए। कई बार पत्नी और बहनों ने भी कहा है, लिख-लिखकर रखते रहते हैं, छपवाते नहीं।

उस दिन ज्योत्सना ने जिद की थी, कहने लगी, 'आज तुम्हारे जन्मदिन पर तुम्हीं से एक चीज़ माँगती हूँ।'

'मुझसे? क्या?'

'नहीं दोगे?'

'किसी को देने लायक़ मेरे पास कुछ हो, मुझे तो याद नहीं आता।'

'है।' ब े विश्वास से उसने कहा था, 'वह गीत सुना दो।'

'कौन सा?'

'वही, ओ सलोने मीत मेरे, दो घ ी कुछ बात कर लो, बैठ जाओ !'

'तुम्हें याद तो है, मुझे तो याद भी नहीं।'

'झूठ !' फिर उसने नटखट बच्चे की तरह मुँह चढ़ाया, मुँह फुलाया, 'तुम्हारे से बोलूँगी नहीं कभी।'

एक सप्ताह भी तो नहीं हुआ, पन्ना का टेलीफ़ोन आया था। छूटते ही कहने लगी, 'बहुत दिनों से पढ़ने को कुछ नहीं मिला।'

'क्यों? पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ छपनी बंद हो गईं क्या?'

' पत्र-पत्रिकाएँ छपनी तो बंद नहीं हुईं, तुमने अपना कुछ छपवाना बंद कर दिया है।'

'उससे क्या?'

'तुम जानते हो मैंने हिन्दी क्यों सीखी थी?'

'हूँ !'

'तो अब मैं भी हिन्दी पढ़ना बंद कर दूँगी।'

लेकिन मैं अब पत्नी को, बहनों को, संबंधियों को कैसे बताऊँ कि इन विश्रृंखल-से भावों को पुस्तकाकार में लाने के लिए भी बहुत-कुछ समेटना प ता है, ज्योत्सना को कैसे विश्वास दिलाऊँ कि वह गीत मुझे सचमुच याद नहीं। याद रखने के लिए मस्तिष्क की जिन शक्तियों को समेटना प ता है, वह मैं नहीं कर पाता हूँ, और पन्ना से क्या कहूँ, जो मेरी कविता के बग़ैर पत्रिका को कोरे काग़ज़ों का ढ़ेर ही समझती है। उसे कैसे समझाऊँ कि. . . .कि रचना को प्रकाशनार्थ भेजने के लिए बहुत-कुछ समेटना प ता है।

फिर देखता हूँ दूसरा पहलू, पारिवारिक। इस बहन की ही बात लो। उसका दिन-ब-दिन बढ़ता हुआ क़द मुझे यह चेतावनी देता रहता है कि वर्ष बीत रहे हैं, और वह ज़माने के हिसाब से पढ़ाई की दौ में पीछे रहती जा रही है। उसका घंटों, रेडियो के पास बैठकर फिल्मी गीत सुनते रहना, उसकी निगाहों का उचटा-उचटापन इस बात की गवाही देते हैं कि उसे अब कोई दूसरा घर चाहिए जहाँ उसकी अपनी दुनिया हो।

उस दिन पत्नी का पत्र आया, लिखा था, सर्दियाँ शुरू हो गईं हैं। कम्बल, रजाई किसी से मेरी ठण्ड नहीं मिटती। आठ वर्षों में पहली बार तुम्हारे से दूर हैं, इस मौसम में। क्या तुम बुलाओगे नहीं मुझे. . . .और फिर एक बार लिखा उसने, बिटिया अढ़ाई साल की हो गई, अभी तक नाम रखा उसका आपने। जो सुनता है मज़ाक करता है। मैं अपनी मर्ज़ी का कुछ भी नाम रख दूँगी, फिर मत कहना कुछ। आपके भरोसे रही तो मेरी ल की जन्म-भर अनामिका ही रह जाएगी, और इसी अढ़ाई साल की बिटिया ने ब ी अरमान-भरी निगाहों से देखकर मुझे कहा था, 'दादा, हम तो आपके साथ चलेंगे, हमारा दिल नहीं लगता आपके बग़ैर।'

'मैं बम्बई पहुँचते ही तुम्हें बुला लूँगा बिट्टो।'

खुशी से नाचती हुई वह बोली थी, 'आहा. . . .हमारे दादा हमें बुलाएँगे. . .दादा ओ दादा, आप मुझे ख़त लिखना मैं झट आ जाऊँगी. . . .यह माँ ब ी खराब है, आपका ख़त मुझे पढ़ने नहीं देती।'

कुछ दिन बाद पता लगा, वह बीमार है, रात को सोए-सोए, 'मेरे दादा ने मुझे बुलाया है, सच कह रही हूँ, बुलाया है ! ' कहकर उठ बैठती है।

मैंने सब सुना, पढ़ा, समझा, और दिल में एक ज्वार-सा उठते हुए मौन हूँ।

और फिर वह दूसरी बहन है। उसके दस वर्ष के विवाहित जीवन में वह पहली बार माँ बनी है। वर्षों से इस दिन का इन्तज़ार था। उसे माँ देखना जीवन के ब े अरमानों में से रहा है। कई बार मनौतियाँ मनाईं हैं। और जिस दिन वह माँ बनी, मानो जीवन का एक बहुत ब ा काम हो गया। मन-ही-मन असंख्य आशीर्वाद दे डाले, स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए शुभ-कामनाएँ कीं। ठीक है, परंतु आज वह बच्ची अढ़ाई महीने की हो गई है। इस बीच में दसियों मिलने वालों ने आकर मौखिक शुभ-कामनाएँ कीं, और वस्त्रों तथा आभूषणों से लाद-लाद गए। मैं मौन यह सब देखता रहा हूँ। समझता रहा हूँ। सोचता रहा हूँ, ऐसा क्या दूँ जो किसी ने न दिया हो। ये वस्त्र और आभूषण ! दिल में कोई कहता है तुम महीनों से यही सोच रहे हो। ये वस्त्र और आभूषण शाश्वत न सही, पर आवश्यक तो हैं, तुम्हारे ह्दय की भावनाओं को किसने देखा है, वे अंधे कुएँ में दबी हुई वस्तुओं की तरह दिल में ही दफ़न रह जाएँगीं। ह्दय की भावनाएँ इन्हीं चीज़ों से प्रकाश में आती हैं. . . .।

और उस दिन मैं कम्मो से कह बैठा।

तुम्हें कुछ फुर्सत है आज?'

काम ही क्या है?'

'तो मेरे साथ चलोगी?'

यह सुनकर वह क्षण-भर के लिए तो जैसे स्तब्ध रह गई। मेरे चेहरे पर से मानो मेरे हृदय के भावों को पढ़ रही हो। फिर वह मुस्कुरा दी। मानो उसका शक दूर हो गया हो। बोली, 'चलो कहाँ चलना होगा।'

'बाज़ार से कुछ खरीदना चाहता हूँ. . . .और मैंने कभी कुछ खरीदा नहीं, तुम अगर साथ होगी तो. . . .'

क्या लेना है सूटिंग?'

हम दोनों की निगाहें मेरी बुश-शर्ट की फटी हुई बाँहों पर गईं। उसकी मुस्कुराहट में कुछ अपनापन लिए हुए हल्का-सा मज़ाक था, मैंने बुरा नहीं माना - कहा, 'नहीं।'

'शर्टिंग?'

'मुझे अपने लिए कुछ भी नहीं लेना है कम्मो। बहन की ल की को कुछ देना है. . . .'

'ओ, प्रैजेन्ट. . . .तो चलो न?'

कुछ ही देर में उसने मुझे लाकर एक बहुत ब ी दुकान में ख ा कर दिया। पता नहीं वह क्या-क्या निकलवाती रही, दिखाती रही, मैं देखता रहा। मैं उसे साथ लाया था, यह सोचकर कि जो भी वह पसंद कर देगी, वही ले लूँगा, और हुआ यह कि उसने जो कुछ भी पसंद किया वह मुझे पसंद नहीं आया। वह सभी कुछ मेरी नज़रों मे बहुत ही साधारण था।

'दूसरी दुकान में चलें?' वह बोली और मैं चुपचाप उसके साथ हो लिया।

दूसरी दुकान पर भी शायद वह सभी कुछ निकलवा चुकी थी।

'आख़िर पता तो लगे, तुम क्या चाहते हो?' उसने कहा।

उसकी मुस्कुराहट में भी जो हल्की-सी उकताहट आ गई थी, मेरे झक्कीपन से, वह मुझसे छिपी नहीं रह सकी। मैंने कहा, 'कम्मो अगर मैं यह जानता होता कि मैं क्या चाहता हूँ, तो तुम्हें साथ न लाया होता।'

'फिर? इतनी चीज़ें देखीं, तुम्हें पसंद ही नहीं आई कोई। तभी तो कहती हूँ, तुम आदमी नहीं।'

'क्या हूँ?'

'पता नहीं, पर यह बात निश्चित है कि साधारण आदमी तुम नहीं हो, वरना तो क्या. . . .'

कम्मो की बात भी ठीक है। हाँ, ठीक ही होगी, क्योंकि साधारण आदमी या यूँ कहूँ कि आदमी बनने के लिए जो कुछ समेटना प ता है, वह मैं समेट ही कहाँ पाता हूँ।

खरोंचें

सरन घई

सिलसिलाए ज़ुल्म उनका मुसल्सल चलता रहा,
हम खरोंचों की तरह उनके सितम सहते रहे।
वो गिराते ही रहे बिजली हमारी राह में,
हम भी हँस-हँसकर उन्हीं राहों पे चलते रहे।
ले के जो आए थे ख़ंज़र दुश्मनी का हाथ में,
दोस्त की मानिंद हम उनसे गले मिलते रहे।
बा सबब हमसे जफ़ा का खेल वो खेला किये,
बे सबब उनकी वफ़ा का ज़िक्र हम करते रहे।
रंग में उनके रंगे उनको ही हम देखा किये,
फेर के नज़रें न जाने किस घ ी वो चल दिये।
हमने जिस माँझी के हाथों सौप दी थी ज़िन्दगी,
उसी नाशुकरे के हाथों जान लुटवाते रहे।
वो न बाज आए, न हम भी कभी पीछे हटे,
ख़ून वो करते रहे, हम क़त्ल करवाते रहे। ********

सरोगेट मदर

डॉ. उषादेवी कोल्हटकर

दोपहर के दो बजे मैं और मेरी सहेली ऐलन, उसकी कार से एक मद्यालय की ओर से जा रहे थे। चौंकिए मत! मेरी सहेली ऐलन 'मद्यालय की वेश्याएँ' विषय पर शोध-ग्रंथ लिख रही है। सिन्डी नामक एक वेश्या आज इंटरव्यू देने के लिए तैयार हो गई थी। उसे मद्यालय में मिलकर, बाद में हम तीनों किसी बाग में या तालाब के किनारे जाकर इंटरव्यू पूरा करने वाले थे।

यहाँ का मद्यालय 'बार' के नाम से पहचाना जाता है। वैसे वहाँ जाने की हिम्मत मैं कभी न करती, परंतु ऐलन के प्रबंध के कारण आज वहाँ जाना संभव हो सका। मेरी क्लास के तथा होस्टल के कई ल के-ल कियाँ वीक-एंड पर वहाँ नियमित रूप से डिस्को या बीयर पीने के लिए जाते थे। मुझे अच्छी तरह से याद है, मैं होस्टल में रहने के लिए आयी, उस शाम प ोस के कमरों से कुछ ल कियाँ मुझसे मिलने आईं और सवाल करने लगीं 'यूषा, तुम शराब पीती हो? तुम्हारे मित्र हैं? तुम डांस करना जानती हो? तुम सिगरेट पीती हो? डू यू डू ड्रग्ज?' इन सारे सवालों के मैंने नकारात्मक जवाब दिये। तब उन्हें मुझपर तरस आया और अत्यधिक सहानुभूति से, 'ओ! देन यू आर गोइंग टू हैव लॉट्स एंड लॉट्स आफ प्रॉब्लम्स्' ऐसा कहते हुये वे अपने-अपने कमरों में लौट गईं। यह बात और है कि उसके बाद, कई बार वे अपनी समस्याएँ लेकर मेरे पास रोती हुई आई थीं। कहने का मतलब यह कि यहाँ की सोशल-लाइफ का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाने वाला मद्यालय, मैं कुछ ही मिनटों में देखने वाली थी।

कार पार्क करके हमने मद्यालय में प्रवेश किया। पहचान का कोई मिल गया तो मुसीबत हो जायेगी इस ख़्याल से मैंने अपना चेहरा स्कार्फ में छिपाने की भरसक कोशिश की।

'आप के लिए पाप सही, मेरे लिए सवाब बनती है।
सौ गम निचो ने के बाद, एक बूँद शराब बनती है।'

इस आशय का अमेरिकन शेर सुनाने वाले अमेरिकन शायर का रूप कैसा होगा, इसकी कल्पना करते हुए मैंने मद्यालय में कदम रखा। मद्धिम रोशनी में, कानों के पर्दे फट जायें इतना शोर करता हुआ संगीत सुनते हुये शराब पीने वाले शौकीन स्त्री-पुरुष सिगरेट के प्रचंड धुएँ में डूब गये थे। 'बार-टेन्डर' निश्छल भाव से सबकी दर्दभरी कहानियाँ सुनते-सुनते शराब के प्याले भर-भरकर दे रहा था। हमारे विद्यापीठ में 'बार-टेन्डर ट्रेनिंग' के भी कोर्सेस थे। कई ल के-ल कियाँ शौक से वह प्रशिक्षण पूरा करते। इस तरह के माहौल में कोई आठ घंटे कैसे काम कर सकता है? ये सवाल मन में आया। वेतन के अलावा ग्राहकों से मिलने वाली भरपूर टिप्स भी एक कारण हो सकता है। इधर युवावस्था शुरू हुई नहीं कि उधर 'व्यक्तिगत-स्वतंत्रता' के आगोश में जाकर गिरने के लिए उतावले युवा ल के-ल कियाँ माँ-बाप का घर छो निकल प ते हैं। ऐसे में अपने गुजारे के लिए पैसे कमाने की सच्चाई का सामना करते हैं। कम समय में पूरा होने वाला पाठ्यक्रम चुनना, ये उससे निकला एक रास्ता है। सहसा मेरा ध्यान एक कोने में बैठकर शराब पीने वाली दो महिलाओं की ओर गया। भरी दोपहर में बार में आकर शराब पीनी प े, ऐसी कौन-सी परेशानी इन स्त्रियों की ज़िन्दगी में आ गयी होगी। यह जानने के कुतुहल से मैं उनकी बाते, ध्यान से सुनने लगी। युवती वृद्धा से कह रही थी ,'कल रात पति से मेरा बहुत झग ा हुआ, वह मुझे छो कर कहीं चला गया। अगर इस बात का मुझे पहले से ही पता होता तो मैं एक पौंड मछली के छः डॉलर्स निन्यानवे सेंट, इस भाव की मछली डिनर के लिए कभी भी न लाती।' वृद्धा कह रही थी, 'आजकल मैं अपने कुत्ते के लिए बहुत ही चिन्तित हूँ, मुझे शक हो रहा है कि कहीं मेरा कुत्ता मेन्टली-रिटार्डेड तो नहीं। आय नोटिस सुईसायडल टेन्डेन्सीज़ इन हिम।' ये सम्भाषण सुनकर मुझे लगा कितना खालीपन भर गया है मनुष्य और मनुष्य के सम्बन्ध में। मैंने देखा सिन्डी को लेकर ऐलन आ रही थी। मैं सिन्डी की तरफ देखती ही रह गई। उम्र उन्नीस-बीस साल, कोमल छरहरा बदन, तीखे नाकनक्श और काफी हद तक खूबसूरत सिन्ड्रेला नाम की ल की इस पेशे को क्यूँ अपनाती है? खैर इस सवाल का जवाब तो ऐलन के अनुसंधानात्मक अध्ययन

से मिल ही जाएगा। कम से कम सिन्ड्रेला नाम की ल की को वेश्या-व्यवसाय नहीं करना चाहिए ऐसा मुझे यूँ ही लगने लगा।

तालाब के किनारे चलकर इंटरव्यू पूरा करते हैं। ऐलन का प्रस्ताव सुनते ही सिन्डी ने कहा, 'अगर आप दोनों को कोई दिक्कत न हो, तो मैं घर जाकर स्नान करना पसंद करूँगी। उसके बाद जो भी पूछना है बिना संकोच पूछ लेना, मैं बढ़िया इंटरव्यू दूँगी।' उसके घर की ओर जाते हुए रेस्टोरेंट दिखाई देते ही उसने कहा, 'ऐलन मेरे लिए खाने-पीने का कुछ सामान खरीद सको तो घर जाकर स्टोव के सामने मेरा वक्त जाया नहीं होगा और तुम्हारे समय में भी बचत होगी।' मतलब स्पष्ट था कि ऐलन को इंटरव्यू के लिए सिन्डी का वक्त खरीदना प रहा था। इतनी कच्ची उम्र में उसके व्यक्तित्व में घुली हुई व्यापारिकता अच्छी नहीं लगी। क्या लेन-देन के बाहर व्यक्ति का कोई जीवन नहीं होता? कोई कर्त्तव्य नहीं होता !

सिन्डी के घर पहुँच गये। उसका घर देखकर मुझे ताज़ुब हुआ। इससे पहले हिन्दी फिल्मों में वेश्या का घर देखा था। वेश्याओं की वस्ती के वर्णन किताबों में पढ़े थे। 'रेड लाइट डिस्ट्रिक्ट' के बारे में सुना था। मेरी पूर्व-कल्पना से पूरी तरह अलग सुरुचि से सजा-सँवरा, प्रतिष्ठित बस्ती में उसका अपार्टमेंट देखकर मैंने चैन की साँस ली। वह नहाने के लिए अंदर चली गयी, इसलिए मैंने बेझिझक उसके 'लिविंग-रूम' का मुआयना करना शुरू किया। कमरे की सजावट अभिरुचिपूर्ण थी। दीवार पर एक अलग ही ढ़ंग की परंतु आशयपूर्ण तस्वीर थी। तस्वीर में दो हाथ थे। मजबूत कलाई, बढ़े हुए बाल, बढ़े हुए नाखूनों वाला अत्यधिक कुरूप एक हाथ। दूसरा हाथ कोमल, तराशी हुई उँगलियों वाली किसी युवा युवती का। चित्र देखते हुए ऐसा आभास होता कि दोनों हाथ एक-दूसरे को छूने की जी-जान से कोशिश कर रहे हैं। मगर फासला ख़त्म नहीं होता।

ऐसे में सद्यःस्नात सिन्डी, ऐलन के खरीदे हुए खाद्य-पदार्थ ट्रे में सजाकर लाई और कहने लगी, 'ऐलन, यू नो, ऑय एम ए वेरी प्रायवेट परसन, मगर तुम मेरी निजी ज़िन्दगी के बारे में व्यक्तिगत प्रश्न भी पूछ सकती हो।' एक वेश्या का यह कथन सुनकर मुझे अजीब लगा। चेहरे का मेकअप धुल जाने के कारण सिन्डी का चेहरा भला और मासूम लग रहा था। मैं ऊब जाऊँगी इस ख़्याल से उसने मेरे हाथ में एक कॉपी दी और कहा, 'इसमें मेरी लिखी कुछ कविताएँ हैं, शायद तुम इन्हें पढ़ना चाहोगी। हो सकता है, वक्त अच्छी तरह से कट जाये।' ऐलन ने पहला सवाल पूछा, 'क्या तुम्हारा पेशा तुम्हें अच्छा लगता है? हाँ या ना? अगर हाँ में जवाब है तो क्यों और ना में जवाब है तो क्यों? दूसरा सवाल, तुम्हारा वैवाहिक दर्जा क्या है? कुमारिका/विवाहिता/तलाकशुदा। या दो शादियों के बीच की स्थिति है? (इन बिटवीन टू मैरिजेज)।' ऐलन की प्रश्नावली में सौ से ज्यादा सवाल हैं इसका मुझे अंदाजा होने के कारण मैंने कविता की कॉपी खोली और पहले पन्ने पर लिखी हुई कविता पढ़ने लगी :

बेरंग नाखून

'आरक्त, मुलायम हथेली
तराशी उंगलियों के गुलाबी अग्रभाग
जतन से रँगे-सँभाले नाखून
अनामिका, मध्यमा में शोभायमान अँगूठियाँ
उसके हाथ... उसके हाथ ज्यों विधाता की कुशल कारीगरी
उन हाथों ने, तराशी उँगलियों ने, रँगे नाखूनों ने
विज्ञापन की दुनिया में उसे दी कामयाबी
अधीर उँगलियों ने गिने अनगिनत नोट
ज़वानी की मदहोश रातों की बाँहों में
खूबसूरत उँगलियों की प्रशंसा के नशे में
जमा हुई अनेक अगूँठियाँ, हीरे की, मोतियों की, सोने-चाँदी की
पैसा, जेवर, पुरुष-स्पर्श की भूखी
उसकी कमनीय उँगलियाँ और खूबसूरत हाथ
आज पहली बार जु रहे हैं

उन्हें तराशने वाले कारीगर के सामने
और उसके आँसुओं के प्रतिबिम्ब में
दिखायी दे रही हैं, तीन गली हुई, दो सूजी हुई उँगलियाँ
जो बची हैं उनके नाखूनों के रंग उ गये हैं
उसकी ज़िन्दगी की तरह. . . .उसकी ज़िन्दगी की तरह. . . .'

एक पल के लिए नज़र सिन्डी के हाथों की ओर चली गयी। वाकई उसकी उँगलियाँ खूबसूरत थीं। इंटरव्यू अब पूरी रफ़्तार पक चुका था। एक बुद्धिमान व्यक्ति जिस तरह तर्क-संगत वार्तालाप करता है, उसी आवेश में सिन्डी बोल रही थी। कह रही थी, 'ऐलन, मेरा व्यवसाय एक शो-बिज़नेस है। शो-वूमनशिप के लिए ज़रूरी सारे तन्त्र मैंने सीखे हैं। कम समय में, कम मेहनत में भरपूर पैसा कमाना प्राथमिक उद्देश्य। अब तुम्हीं सोचो, इस वक्त मेरे पास जो 'मोस्ट एक्सप्लॉयटेबल कमॉडिटी' है, वो है मेरा शरीर। ज़िन्दगी के चंद क्षणों की मैं बॉस हूँ। पुरुष पूरी तरह मेरे वश में है, मेरी ओर पूरा ध्यान दे रहा है, मिन्नतें कर रहा है, मन बहला रहा है। इस भावना का अनुभव करना हर स्त्री को अच्छा लगता है, व्हॉट डू यू थिंक?' कोई भी स्त्री आसानी से सहमत हो जायेगी; कुछ इस प्रकार के विचार सिन्डी प्रकट कर रही थी। उसकी कविता की कॉपी का दूसरा पन्ना मैंने खोला। उस कविता से उपरोध तथा वेदना झलक रही थी।

खेल

'कल रात एक परदेसी मिला
शराब के नशे में कहने लगा
पत्नी के लिए फर-कोट लेने निकला हूँ, चूहे की खाल का
और उसका आलिंगन मुझे, बंदर जैसा लगा. . . .'

पैसों के लिए बंदर जैसे अजनबी के आलिंगन सहनेवाली सिन्डी अपनी कविता में विदुषी लगी। रात को काम पर जाने से पहले उसे अपनी 'ब्यूटी-स्लीप' पूरी करनी थी। इसलिए हमें चलना प ा। सिन्डी कुल मिलाकर छब्बीस मिनट बोली। उसके लिए ऐलन के पैट्रोल और खाने के मिलाकर बीस डॉलर्स खर्च हुए और हम दोनों के कुल तीन घंटे। इस गति से ऐलन के इंटरव्यू कब ख़त्म होंगे? लौटते हुए ऐलन से पता चला कि इससे पहले सिन्डी नेल-पॉलिश और कोल्ड-क्रीम के इश्तहार के लिए हाथों की मॉडलिंग करती थी और कॉलेज में अँग्रेजी-साहित्य में बी.ए.। इश्तहारों के व्यवसाय की बढ़ती स्पर्धा उसे जीने के लिए पर्याप्त पैसे दिलाने में असमर्थ साबित हुई, इसलिए हारकर उसने ये पेशा अपना लिया।

हम दोनों का अध्ययन चल रहा था। उसके बाद ऐलन के साथ मद्यालय जाना न हो सका, परंतु उससे उसके अनुभव सुनने को मिलते थे। पैटी नाम की किसी वेश्या ने ऐलन के टेप-रिकॉर्डर की चोरी की। कई ल कियाँ इंटरव्यू के लिए समय देतीं और ऐलन के वहाँ पहुँचने से पहले नौ-दो-ग्यारह हो जातीं। कई बार इंटरव्यू के दौरान उनके लिए खाना और ड्रिंक्स लेने प ते, उसका अलग से खर्च होता। कार के लिए पैट्रोल का खर्च, कभी बस से आना-जाना, कई बार समय का अपव्यय, परेशानी, परंतु ऐलन अपनी पी.एच.डी. के लिए सब कुछ सह रही थी।

एक दिन अचानक रेडीमेड-कप ों के स्टोर में सिन्डी मुझे मिली। उसे देखते ही मेर चेहरे के भाव बदल गए। सिन्डी माँ बनने वाली थी। माँ बनने वाली औरतों के खास कप ों के विभाग से उसे कप े खरीदने थे। मुझे देखकर उसे अच्छा लगा होगा। थकी हुई आवाज़ में उसने कहा, 'स्टोर के कैफीटेरिया में चाय पीना पसंद करोगी? ऑय कैन रियली यूज़ सम रेस्ट।' उसकी यह अवस्था देखकर मैंने तुरंत हाँ कह दी। चाय का कप सामने रखकर, सिन्डी की ज़िन्दगी में, हमारी प्रथम भेंट के बाद घटी हुई तूफानी घटनाएँ मैंने सुनीं। सिन्डी से अधिक खूबसूरत और कम-उम्र ल कियाँ मद्यालय में आने के कारण उसका धंधा ठीक से नहीं चल रहा था। घर का किराया देने के लिए, रोज के खर्चे चलाने के लिए, गुजारे के लिए हमेशा के ग्राहकों से, सहेलियों से, अनेक बार पैसे उधार लिये। जेवर

बेचे और आख़िर में थक कर उसने सरोगेट मदर बनने का निश्चय किया। सारी कोशिशों के बावजूद जिन्हें बच्चा नहीं हो सका; ऐसे पति-पत्नी दोनों की मर्जी से, सरोगेट मदर होने के लिए जो तैयार है, ऐसी स्त्री का गर्भाशय किराये पर लेते हैं। कृत्रिम गर्भधारण के तरीके इस्तेमाल करके उस स्त्री को गर्भवती बनाया जाता है। 'प्रतिनिधि माता' यह अर्थपूर्ण नाम 'सरोगेट मदर' इन शब्दों से सूचित होता है। फिर भी उसके पीछे छिपा हुआ भीषण सत्य, मातृत्व इस संज्ञा को शोभा नहीं देता, यह बात तो निश्चित है। सिन्डी के लिए मदर या माँ बनना अहम् बात नहीं थी। कम समय में ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाना ये एकमेव उद्देश्य मन में रख कर उसने योग्य संस्था से सम्पर्क किया और वह सरोगेट मदर होने के लिए 'ॲव्हेलेबल' है, ये बताया। बच्चे के लिए तरसने वाले एक अमीर पति-पत्नी संस्था के जरिये सिन्डी से मिले। सारी डॉक्टरी जाँच संतोषजनक होने के कारण और सिन्डी का ख़ूबसूरत रूप देखकर उन्होंने उसके साथ कानूनी करार किया और उसका गर्भाशय २५०००डॉलर्स में किराये पर लिया। उसे गर्भवती होते ही करार के अनुसार उसे १००००डॉलर्स पेशगी के तौर पर दिये गए। संस्था को अपना कमीशन मिला। अब कुछ महीनों के लिए ही क्यों न हो, उसकी आर्थिक समस्या हल हो गई है। चाय ख़त्म हुई। मुझे धन्यवाद देकर, सिन्डी अपने किराये के मातृत्व के लिए कप` ढूँढ़ने चली गयी।

सिन्डी गयी, और उस दिशा में देखते हुए मैं सोचने लगी। कुछ ही महीनों में सिन्डी माँ बनेगी। अपनी साँसों के हिस्सेदार को अपने खून से पालकर, अपने पेट का बच्चा दूसरी अपरिचित स्त्री की गोद में डालते हुए, परायी औरत को अपना मातृत्व दान देते हुए सिन्डी के दिल पर क्या बीतेगी? उसके सीने में औरत का जो दिल ध क रहा है, वह माँ बनने के बाद इस तरह की कठिन परिस्थिति से समझौता कर पाएगा? बच्चा पैदा होने के बाद शारीरिक सौन्दर्य कम हो गया तो, वह कौन-सा व्यवसाय करेगी? करार के अनुसार बाकी १५,०००डॉलर्स मिल जाएँगे, मगर उनके ख़त्म होने के बाद आगे क्या होगा? जीवन के प्रति जो आस्था है, वह किसी भी प्रकार से सिर्फ़ देह को जीवित रखने तक ही मर्यादित हो, यह क्या ठीक लगता है। परमात्मा ने औरत को माँ का हृदय देकर निःस्वार्थ प्रेम, सेवा, त्याग, भक्ति और क्षमा की मूर्ति बनाया। परंतु सिन्डी ने अपने हिसाब से माँ की प्रतिभा को बेहिसाब भ्रष्ट किया। ये भी क्या ठीक लगता है? अपने ख़ूबसूरत शरीर को 'एक्सप्लॉयटेबल कमॉडिटी' मानकर शरीर का सौदा कर डाला। उसमें फायदा नहीं हुआ, इसलिए सिन्डी ने अपने आपको 'बेबी मशीन' बनाया। गर्भाशय को चम` की थैली बनाकर बाजार दिखाया। मुझे लगता था, संवेदनशील, भावुक, स्नेही स्त्री जब माँ बनती है तब वह अपनी भीतरी चेतना-शक्ति से, सर्जनात्मकता से परिचित होकर, शक्तिसम्पन्न बन जाती है। उसी ताकत के सहारे वह अपने माँ होने का कठिन दायित्व सहजता से सँभालकर महान कहलाती है। वही प्रभावी, पवित्र, समर्थ मातृत्व यहाँ इतना बाजारू बन जाये?

पति के घर जाना है इसलिए बचपन से ल कियों में एकनिष्ठता, सतीत्व के संस्कार भरनेवाला मेरा समाज और इधर ल की हर समय अपने-आपको आकर्षक बनाये रखे, इस तरह बचपन से ल की का समाजीकरण करने वाला यहाँ का समाज। विचारों के इस प्रचंड अंतर के कारण यहाँ औरत के सौन्दर्य का व्यापार होता है। व्यापारीवृत्ति-पुरुष स्त्री को वस्तु मानकर उसका उपयोग करता है, उपभोग करता है। उपभोग करते हुए उसका सब कुछ छीनने में विश्वास रखता है, कुछ देने में नहीं। उपभोग करके भी स्त्री का अस्तित्व कबूल नहीं करता। स्त्री के प्यार, संवेदना, भावना की कोमलता, आवेग की स्वाभाविकता को व्यापारीवृत्ति-पुरुष कभी नहीं समझ पायेगा। मातृत्व जैसी पवित्र भावना से पैसे निकालने वाले अमेरिकनों को क्या कहा जाये? क्या यहाँ का सामाजिक परिवेश औरत को पुरुष की सामर्थ्य बनने का मौका देता है? स्त्री-मुक्ति-आंदोलन उसे किस दिशा में ले जा रहा है? 'ईज़ी वे आउट' या सहजता से उपलब्ध अनेक 'ऑप्शन्स' के कारण एक से अधिक शादियाँ करके तुम्हारे, मेरे और हमारे (your, mine and ours) बच्चे पालने वाले परिवार मानसशास्त्रज्ञों का और मनोरुग्णज्ञों का बैंक-बैलेन्स क्यों बढ़ा रहे हैं? माँ का एक्स-हज़बंड, पिता की एक्स-वाइफ़ या स्टेप फादर की एक्स-वाइफ़ का बेटा/बेटी, इस तरह के रिश्तों की खिच ी छोटे बच्चों की भावनात्मक सुरक्षा की धज्जियाँ क्यों उ ा रही है? ऐसे कई सवाल मन में उभरे और अब एक नया सवाल इन सवालों की भी में शामिल होने जा रहा था। सिन्डी जैसी मद्यालय में काम करने वाली वेश्या को 'सरोगेट मदरहुड' प्रदान करके समाज क्या पाना चाहता है? सिन्डी जैसी न जाने कितनी और

युवतियाँ, मनमानी करते हुये जीने के प्रयास में आख़िर अकेलेपन की व्यथा को सहलाती हुई परकटे पंछी की तरह त पती होंगी। 'सरोगेट मदरहुड' इस संकल्पना को स्वीकार करके यहाँ के समाज के प्रश्न बढ़ गये हैं, कम नहीं हुए। इस समस्या की कानूनी व्यवस्था करने की चर्चा भी चल रही है। मगर इस चर्चा को भी काट दिया है अमेरिकन व्यक्ति स्वातन्त्र्य की कल्पना ने। आख़िर ये प्रत्येक का व्यक्तिगत सवाल है। आख़िर कोई भी समाज, सामाजिक स्थिरता की दृष्टि से किसी भी संकल्पना की स्वीकारोक्ति या अभिव्यक्ति एक सीमा तक ही सह सकता है। 'व्यक्ति स्वातन्त्र्य' इस संकल्पना की अभिव्यक्ति यदि सीमा के बाहर हो जाये तो समाज का अर्द्धांग ही नहीं बल्कि पूरा समाज ही विकलांग होने लगता है क्या? 'आओ यूषा, चलते हैं', सिन्डी की आवाज़ ने मुझे ख़्यालों से जगाया। वह कह रही थी, 'अगर वक्त मिले, तो मुझसे मिलने जरूर आना। मैं तुम्हें 'मातृत्व' पर लिखी अपनी नयी कविताएँ दिखाऊँगी।'

उम्मीद

निर्मल सिद्धू

लगता है सूरज निकल रहा है,
उजाले की किरणें आने लगी हैं।
अँधेरे के साये भाग चले हैं,
उम्मीद की रौशनी छाने लगी है।
बादल गहरे अब छँटने लगे हैं,
उफ़क़ में लालिमा इतराने लगी है।
डूबे थे नशे में जो रात भर,
ख़ुमारी उनकी भी जाने लगी है।
बेखबर रहते थे जो हरदम,
उनको मेरी याद आने लगी है।
मानते नहीं थे जो किसी की कभी,
ज़िन्दगी उनको भी समझाने लगी है।
तलाश में थे जिनकी हम हर घ ी,
तकदीर उनको पास लाने लगी है।
यादों के साये मिटे नहीं मिटाये,
परछाईयाँ भी कहीं दूर जाने लगी हैं।
उदासियों में क्यों हो डूबे निर्मल?
अब तो मंज़िल करीब आने लगी है।

माँ

कमल कपूर

धरती-सी सहिष्णु
और
आकाश-सी महान है माँ
मेरे होने, मेरे वज़ूद, मेरे अस्तित्व की
पहचान है माँ
कैसे करूँ? क्या करूँ?
मैं व्याख्या . . इस एक अक्षरीय शब्द
'माँ' की,
भाषा की हद और परिभाषा की सरहद से
कोसों दूर है यह।
मेरे जीने की वज़ह
मेरा गरुर है यह
प्रभु का भेजा सर्वोत्तम उपहार नहीं माँ
स्वयं ईश्वर का अवतार है माँ।

* * * * * * * * * * * *
* * * * *
* * *
*

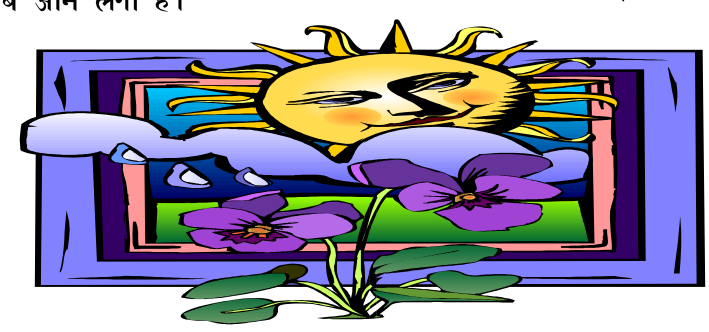

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित